

जैनधर्म और दर्शन की वैज्ञानिकता

सतेन्द्रकुमार जैन

एम. ए., एम. फिल.ए. ,जे. आर. एफ.

प्रकाशक

धर्मोदय साहित्य प्रकाशन

सागर (म. प्र.)

- कृति : जैनधर्म और दर्शन की वैज्ञानिकता
- प्रस्तुति : सतेन्द्रकुमार जैन
- सम्पादन : श्रीमती डॉ. दर्शना जैन
- संस्करण : प्रथम, 2011
- ISBN : 978-81-910547-9-8
- आवृत्ति : 1100 प्रतियाँ
- मूल्य : 30/-
- प्राप्ति स्थान : धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
बाहुबली कॉलोनी, सागर (म. प्र.)
मो. 094249-51771
dharmodayat@gmail.com
- मुद्रक : विकास आफसेट, भोपाल

प्रस्तावना

आजकल दुनिया में विज्ञान का नाम बहुत सुना जाता है। जैन दर्शन के जितने सिद्धान्त हैं। वे सभी ऐसे हैं जिनकी यथार्थता विज्ञान से सिद्ध होती है। प्रत्येक वस्तु की सिद्धि के लिए आगम प्रमाण तो एक वस्तु निर्देशक है, इसके अतिरिक्त आगम में वर्णित प्रत्येक वस्तु हेतु और युक्ति से सिद्ध होती है। आज विज्ञान का युग है इसलिए जो बात विज्ञान सम्मत होती है, वह मान्य होती है। इस पुस्तक में कतिपय विज्ञान सम्मत सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया गया है।

आज के विज्ञान को लौकिक विज्ञान, यन्त्र विज्ञान ऐसा कहते हैं। सामान्य लोगों की अपेक्षा यह ज्ञान श्रेष्ठ है। इसलिए विज्ञान कहते हैं। लेकिन जैनसिद्धान्त इसको विज्ञान नहीं मानता है। जैनसिद्धान्त विराग ज्ञान / विशिष्ट ज्ञान को ही विज्ञान कहता है, क्योंकि वह केवलज्ञान से साक्षात् जाना जाता है।

लौकिक विज्ञान के सिद्धान्त भी हर समय बदलते ही रहते हैं। वस्तु कैसी है? लोक कैसा है? ऐसे निश्चित निर्णय पर नहीं पहुँच पाते हैं। लेकिन भगवान् ने इस विषय को केवलज्ञान के माध्यम से जानकर लोक कैसा है? इसका ऐसा निर्णयात्मक बोध हमें दिया है, जो कभी भी नहीं बदलेगा। धीरे-धीरे विज्ञान भी इस वीतराग विज्ञान की ओर आ रहा है। उसको मान रहा है। एक दिन पूरा-पूरा मानेगा, क्योंकि वह पूर्ण ज्ञान से जाना हुआ है। वह ज्ञान सबको सुख, शांति प्रदान करता है।

कर्म को किसी यन्त्र से देख नहीं सकते, जान नहीं सकते और शब्द जैसे देख नहीं सकते ऐसी वस्तु है कर्म। अपनी आत्मा से कर्म को कैच कर सकते हैं। हमारी आत्मा में जैसा शुभ और अशुभ भाव उत्पन्न होता है वैसा कर्म भी शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप रूप बदल जाता है। आत्मा में कुछ काल तक रहता है। अपने को सुख-दुःख पहुँचाता है। जब तक कर्म रहेगा तब तक हमें पूर्ण शांति नहीं मिलेगी।

इस लोक में कर्मों का फल नहीं मिलता है तो सभी लोग समान दिखना चाहिए। सभी धनवान होना चाहिए और सभी सुन्दर होना चाहिए। वैसे क्यों नहीं है? छोटे बड़े क्यों? अच्छे बुरे क्यों? अमीरी, गरीबी क्यों? क्या कारण है? इसका कारण अपना कर्म ही है। हमारे भावों से बंधे हुए पुण्य-पाप कर्म ही हैं। इस कारण से ही इस लोक के हर एक व्यक्ति में बहुत अन्तर दिखता है।

ज्योतिष लोक वर्णन के बारे में आज का विज्ञान धीरे-धीरे जैन शास्त्रों में बताये हुए निर्णय पर आ रहा है।

हमारे शास्त्रों में जम्बूद्वीप में दो सूर्य, दो चन्द्र हैं। लवण समुद्र में 4 सूर्य, 4 चन्द्र हैं। ऐसे ढाईद्वीप तक 132 सूर्य और चंद्र है तथा ढाईद्वीप के बाहर असंख्यात सूर्य-चन्द्र हैं। वे शाश्वत् हैं। ढाईद्वीप के अन्दर जो सूर्य, चन्द्र रूप ज्योतिष देव हैं, वे मेरु पर्वत की परिक्रमा देते हुए सदा गमन करते रहते हैं। इस कारण से घटी, घण्टा, पहर, दिन, रात, पक्ष, मास, अयन आदि होते हैं। जिसका हमारे जैनसिद्धान्त में सूक्ष्मता से वर्णन आया है।

अणु-परमाणु के बारे में विज्ञान अपने जैनदर्शन में बताये गये तथ्यों को अपना रहे हैं ऐसा कहते हैं। 'भेदादणु' भेद से अणु बनता है। जिसमें आगे भेद नहीं कर सकते हैं, वह परमाणु है। लेकिन विज्ञान इसमें पीछे है। आज जिसको वह परमाणु कहता है, कल उसी को स्कन्ध कहता है। भेद करते ही जा रहा है। हम लोग जिसे परमाणु बोलते हैं, उस परमाणु का भेद नहीं कर सकते हैं, न आँखों से देख सकते हैं और न ही यंत्र से देख सकते हैं। स्कन्धों की उत्पत्ति भेद से, संघात से और भेद-संघात से ऐसे तीन प्रकार से होती है। जैनदर्शन में इसके बारे में सूक्ष्मता से बताया है। इसी सूक्ष्मता की ओर विज्ञान भी जा रहा है। हमारे जैनदर्शन की अनेक सूक्ष्म बातों का विज्ञान सहारा ले रहा है।

इस काल के विज्ञान ने बहुत विचार करके अनेक यंत्र बनाये हैं। आकाश में जाने के लिए भी यंत्र बनाये हैं। राकेट, प्लेन, सेटेलाइट सब बनाये हैं। लेकिन आत्मा के लिए कुछ नहीं। शांति के लिए वीतराग विज्ञान ही श्रेष्ठ

है। संसार शरीर से मोह को हटाकर प्रत्यक्ष ज्ञान से सीधे आत्मा से उत्पन्न हुआ ज्ञान ही आत्मा से विकल्पों को दूर कर शांति प्रदान कर सकता है। आज भी कुछ जगह ऐसी हैं जहाँ विज्ञान की पहुँच नहीं, जैसे आकाश में विमान जैसी एक वस्तु बहुत तेज गति से जाती दिखाई देती है। अभी भी इसको जानने के लिए विमान द्वारा प्रयास किया जा रहा है। विमान कैसा है? उसके अन्दर कौन है? किस शक्ति से चल रहा है? ऐसा चिन्तन किया जा रहा है। उसको देखने के लिए यन्त्र से पास में गये तो उस विमान की शक्ति से यन्त्र जल गया, नष्ट हो गया। बहुत बार प्रयास करने पर भी पास में नहीं जा सके। बहुत दूर से देखा था। उसका आकार भी नहीं दिखा। वे कितने आगे हैं? कहाँ रहते हैं? उनका स्थान कैसा है? मालूम नहीं। हम कितने पीछे हैं? वहाँ रहने वाले बहुत शक्तिशाली हैं। वहाँ पर जा नहीं पा रहे हैं। कितना वर्ष लगेगा? कब देख पायेंगे? लेकिन प्रयास रत हैं। इससे मालूम पड़ता है कि विज्ञान कितने पीछे है। समुद्र में जाते समय अन्तिम सीमा तक जाएँ ऐसा सोचते हैं। लेकिन अन्तिम सीमा तक नहीं जा सके। जहाज रुक जाता है वहाँ पर कौन-सी शक्ति है? फिर भी जाने के लिए प्रयास किया, लेकिन नहीं जा सके। उसी तरह सूर्य, चन्द्र एक ही है ऐसा कहते थे। फिर दो सूर्य, दो चन्द्र हैं ऐसा कहने लगे। फिर अभी अनेक सूर्य, अनेक चन्द्र हैं ऐसा कहते हैं। लेकिन पूर्ण निर्णय पर नहीं पहुँच पाते। इसलिए प्रत्यक्ष ज्ञान ही सभी पदार्थों को जान सकता है। यन्त्र से सभी पदार्थों का ज्ञान नहीं हो सकता।

जैनदर्शन में द्रव्यों के विषय में जितना विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। उतना विवेचन विज्ञान में प्राप्त नहीं होता है। जैनदर्शन में षड्द्रव्यों के बारे में विज्ञान के अनुरूप विवेचन प्राप्त होता है परन्तु विज्ञान इन बातों से अभी तक अनभिज्ञ है।

विज्ञान बैक्टेरिया को सूक्ष्म जीव मानता है। परन्तु जैनदर्शन ने विज्ञान के सूक्ष्म जीव को तर्क से बादर जीव सिद्ध किया है। जिनकी भ्रांति अभक्ष्य पदार्थों को भक्ष्य मानकर खाने की थी उनकी इसी प्रकार की कुछ भ्रांत मान्यता को इस पुस्तक के माध्यम से दूर करने का एक लघु प्रयत्न किया गया है।

आज का यन्त्र विज्ञान जब वीतराग विज्ञान को मानेगा तभी पूर्ण होगा। जैनधर्म में वीतराग विज्ञान ही सभी विज्ञानों का सार है। ऐसे विज्ञान को अनेकान्त स्याद्वाद भी कहते हैं। ऐसा जिनशासन सदा जयवन्त रहे।

डॉ० भरत जैन

सम्पादकीय

वर्तमान युग विज्ञान युग के नाम से जनमानस में स्थापित है। प्रत्येक व्यक्ति विज्ञान से उत्पादित वस्तुओं को ग्रहण कर रहा है तथा प्राचीन पद्धति से उत्पादित वस्तुओं को तिलाञ्जलि दे रहा है। जबकि प्राचीन पद्धति से उत्पादित वस्तुएँ अधिक शुद्ध और समय साध्य हैं। इसकी अपेक्षा वैज्ञानिक पद्धति से उत्पादित वस्तु हिंसाकारक एवं अल्पावधि में उपलब्ध हो जाती है। इसकारण आज का मानव धर्म को त्यागकर सरलतम तरीके को अपनाकर भ्रमर सदृश भ्रमण कर रहा है। फिर भी उन्हें इन वैज्ञानिक विधियों को अपनाकर सुख शान्ति नहीं मिल पा रही है।

वस्तुतः जैनदर्शन वैज्ञानिक दर्शन है। परन्तु इसे न समझने के कारण जैनदर्शन से जुड़े व्यक्ति भी विज्ञान के कथन को प्रथम मान्यता देकर धर्म के कथन को आस्था का प्रतीक मानकर ग्रहणकर रहे हैं। जैनधर्म पूर्व में ही वैज्ञानिक कथनों पर प्रकाश डाल चुका है। आचार्य समन्तभद्रस्वामी ने आज से 1900 वर्ष पूर्व तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ की टीका गंधहस्तिमहाभाष्य के पंचम अध्याय में पूर्णतः वैज्ञानिक विधि का वर्णन किया था परन्तु दुर्भाग्य से वह अमूल्य कृति लुप्त हो गई। यदि वह कृति उपलब्ध होती तो बहुत सारे विषयों की भ्रांतियों से भ्रम समाप्त हो जाता।

जैनदर्शन के प्रत्येक सिद्धान्त वैज्ञानिक सिद्धान्तों को कहीं न कहीं स्पर्श जरूर करते हैं, परन्तु यह समझ पाना हमारी स्थूल दृष्टि और स्थूल बुद्धि के परे है। जैनदर्शन में पहले ही यह कथन किया जा चुका है कि पंचमकाल में समुद्र का स्तर बढ़ेगा। जिसे वैज्ञानिक वर्तमान समय में सिद्ध करके कहते हैं कि प्रत्येक तीन साल में समुद्र का स्तर तीन इंच बढ़ जाता है। जिससे पृथ्वी एक चौथाई भाग रह गई है। जैनदर्शन में श्रावकों को जलगालन एवं रात्रिभोजन त्याग का निर्देश प्रथम दृष्ट्या ही दिया गया है, क्योंकि जैनाचार्यों ने पहले ही यह जान लिया था कि जल में जीवों का

सद्भाव है, जिसे बिना छाने पीने से जीव हिंसा के साथ स्वास्थ्य भी खराब होगा। वैज्ञानिकों ने यह सिद्धान्त अभी सिद्ध किया है कि रात्रिभोजन में अनगिनत जीवों की हिंसा होती है तथा कुछ जीव हमारे शरीर में प्रवेश कर बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं तथा जल में बैक्टेरिया जीव पाए जाते हैं। जिनके ग्रहण करने से अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। इसी कारण दिन में भोजन करना तथा प्रासुक पानी पीने का निर्देश दिया है। जैनदर्शन में वर्णित द्रव्यों की विवेचना की सिद्धि वैज्ञानिक आज भी कर रहे हैं। जिनकी स्थूल सिद्धि दृष्टिगत होती है।

इस पुस्तक में जैनदर्शन के कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में किया गया है। इस पुस्तक में बैक्टेरिया को जैनदर्शन की मान्यता से समझाने के बाद वैज्ञानिकता से समझाने का प्रयास गुमराह व्यक्ति को दिशा निर्देश करेगा। समाज में आज भी भ्रांति व्याप्त है कि बैक्टेरिया सूक्ष्म जीव है। जिसके खाने से पाप नहीं लगता। इस कारण वे बिना संकोच के दही, छाछ की मर्यादा को ध्यान में न रखकर तथा दही, छाछ की विधि को भुलाकर दही, छाछ को ग्रहण कर रहे हैं। जबकि जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में और वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो बैक्टेरिया बादर जीव है। जो एकेन्द्रिय बादर से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक हो सकता है। इनके घात में त्रस जीव के घात का दोष लगता है।

इस पुस्तक में दही, छाछ की विधि का पूर्णता वर्णन किया है साथ ही रात्रिभोजन करने से धार्मिक दुष्प्रभाव एवं वैज्ञानिक दुष्प्रभाव का तथा रात्रिभोजन का त्याग करने वाला प्राणी कई तरह की बीमारियों से बच सकता है। आहार शुद्धि, चौका शुद्धि, भक्ष्याभक्ष्य विवेक, आहार सामग्री की मर्यादाकाल का विवेचन करके जैन बंधुओं को वैज्ञानिकता की आँधी से बचाने का पूर्ण प्रयत्न इस पुस्तक के माध्यम से किया गया है। साथ ही पुस्तक में जैनदर्शन के तीन अनुयोगों का किञ्चित् आश्रय लिया गया है। जिसमें प्रथमानुयोग में जैनधर्म का इतिहास, चरणानुयोग

में श्रावक की चर्या एवं द्रव्यानुयोग में द्रव्य का स्वरूप वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में दिया है।

वर्तमान समय में प्रत्येक बालक वैज्ञानिक पद्धति को सीखने का इच्छुक है। जिसमें जैन भी शामिल हैं। इस अवसर पर यदि जैन बालक विज्ञान के अध्ययन के साथ जैनधर्म का अवलम्बन भी लेता है तो वह बहुत सारे तथ्यों को उजागर कर सकेगा। समाज में उपस्थित पाठकगणों एवं जैनदर्शन के विद्वानों से मैं निवेदन करना चाहती हूँ कि समाज में जैनदर्शन के शिक्षण में णमोकार मंत्र, पाप, कषाय, व्यसन आदि पाठों के साथ उन्नत बुद्धि वाले बालकों को जैनधर्म की वैज्ञानिकता नामक पाठ भी पढ़ाने का प्रयास करें। जिससे तर्कशील बालक बाजारों में मिल रहे अभक्ष्य के सेवन से बच सकेंगे तथा जैनधर्म की महत्ता को वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में समझ सकेंगे।

श्रीमती डॉ० दर्शना जैन

प्राक्कथन

21 वीं सदी की अन्धी दौड़ में मानव अपने जीवन के बहुमूल्य क्षणों को यूँ ही बर्बाद करके व्यतीत कर रहा है, उसे अपने जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य मालूम नहीं है। उसने अपना लक्ष्य मात्र कमाना, खाना और सोना ही मान रखा है। उसकी जिन्दगी मकान, दुकान, ऑफिस एवं अपने परिवार तक ही सीमित है। ऐसे में वर्तमान समय में भगवत् भक्ति में समय निकाल पाना बहुत कठिन मालूम पड़ता है, विज्ञान का जहाँ अत्यधिक जोर है। वहाँ व्यक्ति अपने गृह के कार्य करते हुए भी कैसे पुण्य कमा सकते हैं? यह सभी विज्ञान की जानकारी तथा जैनदर्शन का सही ज्ञान प्राप्त करके किया जा सकता है।

विज्ञानवादियों के लिए यह पुस्तक दिशादर्शन करायेगी। आज वैज्ञानिक युग में विद्यार्थी विज्ञान का अध्ययन तो कर लेता है परन्तु जैनदर्शन का अध्ययन नहीं कर सकने के कारण वह विज्ञान की बातों को सत्य मानने लगता है तथा जैनदर्शन के रहस्य को जाने बिना जैनदर्शन के सिद्धान्तों को गलत साबित कर देता है। इस कारण जैन विद्यार्थियों को विज्ञान के साथ-साथ जैनदर्शन का भी अध्ययन अवश्य करना चाहिए। प्रस्तुत पुस्तक में जैनदर्शन को आधार बनाकर धार्मिक एवं वैज्ञानिक तथ्यों को समाहित कर ऐसी दिशा प्रदान की गई है, जो सभी के नए आयाम प्रस्तुत करेगी।

प्रस्तुत पुस्तक चार अध्यायों में विभक्त है—प्रथम अध्याय में जैनधर्म एक वैज्ञानिक धर्म, द्वितीय अध्याय में जैनधर्म का आचार एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तृतीय अध्याय में कर्म सिद्धान्त एक वैज्ञानिक विवेचन एवं चतुर्थ अध्याय में षड्द्रव्य विवेचन प्रस्तुत किया है। चारों अध्यायों में लगभग 49 बिन्दुओं पर सप्रमाण जैनधर्म और दर्शन की वैज्ञानिकता को प्रस्तुत किया है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रारम्भ मेरे द्वारा सितम्बर 2009 में लघु शोध प्रबन्ध के रूप में हुआ। इस पुस्तक का लेखन करते समय मेरे द्वारा जीव एवं पुद्गल की वैज्ञानिक विवेचना नामक आलेख का वाचन मुनि पुद्गव श्री सुधासागरजी महाराज के सान्निध्य में सवाई माधोपुर में आयोजित अखिल भारतीय वर्षीय विद्वत् संगोष्ठी में किया गया। जिसका प्रकाशन तुलसी प्रज्ञा शोध पत्रिका लाडनूँ में किया गया। मैंने दूसरे शोध आलेख जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में बैक्टेरिया विज्ञान का वाचन राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, तिरुपति में आयोजित संगोष्ठी में किया तथा वर्धमान पत्रिका में जैन आहार शुद्धि आलेख का प्रकाशन भी हुआ। इन लेखों की विद्वत् जगत् में सराहना भी हुई। इस पुस्तक में जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों की रक्षा के लिए श्रावक के द्वारा पालन किए जाने वाले तीन कर्तव्यों में से दो कर्तव्य रात्रिभोजन त्याग तथा पानी छानने की विधि में आये वर्तमान परिवर्तन के विषय में भी प्रकाश डाला गया है। वर्तमान में जो श्रावक विद्युत रोशनी को सूर्य प्रकाश के समान मानकर दिन में भोजन करने का भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं तथा पानी की विधि में बैक्टेरिया को स्थावर जीव मानकर श्रावक के द्वारा पीने योग्य मानकर त्रस जीवों का भक्षण कर रहे हैं। बैक्टेरिया स्थावर जीवों का घर है, अतः श्रावक को निःसंकोच ग्रहण करने योग्य है ऐसा मानकर दही, छाछ, भक्ष्य, अभक्ष्य पदार्थों का विवेक नहीं रख सेवन कर रहे हैं। इन भ्रांतियों को जैनदर्शन एवं वैज्ञानिकता के आधार पर निर्मूलन किया गया है।

इस पुस्तक में पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज ने अपना परामर्श देकर इस पुस्तक को बहु उपयोगी बनाने में सफल निर्देशन दिया। जैन अनुशीलन केन्द्र राजस्थान विश्वविद्यालय के पूर्व निदेशक एवं वर्धमान पत्रिका के संपादक डॉ० पी० सी० जैन साहब के द्वारा महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए गए। इस केन्द्र के वर्तमान निदेशक प्रो० अनिलजी जैन के द्वारा भरपूर सहयोग दिया गया। तुलसी प्रज्ञा पत्रिका के सम्पादक प्रो० जगताराम भट्टाचार्यजी एवं मुमुक्षु शान्ताजी जैन ने आलेख को प्रकाशित कराने में सहयोग दिया। इस पुस्तक के सम्पादन में मेरी धर्मपत्नि श्रीमती डॉ०

दर्शना जैन ने अथक परिश्रम किया तथा इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखने में एवं प्रकाशन में मेरे अग्रज भ्राता डॉ० भरत जी जैन ने जो अथक परिश्रम किया, जो अविस्मरणीय है। प्रो० वृषभप्रसादजी जैन लखनऊ, प्रो० राधेकान्तजी ठाकुर, प्राचार्य अरुणकुमार जी जैन, ब्यावर जिन्होंने इन शोध आलेखों को प्रस्तुत करने के लिए इस लघु शोधार्थी को अवसर दिया, ये धन्यवाद के पात्र हैं। मुनिपुङ्गव सुधासागरजी महाराज के चरणों में आभार सहित नमोऽस्तु करता हूँ तथा मेरे पूज्यनीय पिता श्री विजयकुमार जी जैन तथा मातुश्री श्रीमती सुशीलादेवी जी जैन ने अपने असीम स्नेह से परिपूरित आशीष दिया। इनके चरणों में वंदन करता हुआ आभारी हूँ तथा इन सभी महानुभावों का भी मैं हृदय से आभारी हूँ।

सतेन्द्रकुमार जैन

अनुक्रम

अध्याय प्रथम- जैनधर्म : एक वैज्ञानिक धर्म

जैन का अर्थ	15
धर्म का अर्थ	15
दर्शन का अर्थ	16
जैनधर्म का इतिहास	17
जैनधर्म का उद्भव	18
जैन परम्परागत इतिहास	18
जैनधर्म के सिद्धान्तों की सिद्धि	26
निगोदिया जीव एवं आधुनिक विज्ञान	26
आधुनिक विज्ञान में सूक्ष्म जीव	27
जैनधर्म एवं वनस्पति विज्ञान	31
आधुनिक चिकित्सा पद्धति एवं अहिंसा	31
विद्वानों एवं वैज्ञानिकों के जैनधर्म के विषय में विचार	34

अध्याय द्वितीय- जैनधर्म का आचार: एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण

विज्ञानापेक्षा सूक्ष्मजीव	43
जैनदर्शनापेक्षा सूक्ष्मजीव	44
सूक्ष्मजीव के भेद विज्ञानापेक्षा	45
बैक्टेरिया क्या है?	46
बैक्टेरिया जीवों का स्थान	47
दही, छाछ में बैक्टेरिया हैं अथवा नहीं	48
सामान्य एवं आधुनिक विधि	48
जैनदर्शनानुसार दही बनाने की विधि	49
जलगालन विधि एवं बैक्टेरिया	50
रात्रिभोजन निषेध	53
रात्रिभोजन का प्रारंभ कब, क्यों	54
रात्रिभोजन के कारण	54

शाकाहारी एवं मांसाहारी प्राणियों की विशेषता	56
रात्रिभोजन क्यों नहीं ?	57
मानसिक अशुद्धता	57
रात्रिभोजन का त्वचा पर प्रभाव	69
रात्रिभोजन और हड्डियों की सक्रियता	70
रात्रिभोजन और फेफड़ों पर प्रभाव	70
जैनधर्म में रात्रिभोजन	71
आहार का स्वरूप	74
आहार की आवश्यकता	74
जैन आहार संहिता में मान्य मर्यादाएँ	79
भक्ष्याभक्ष्य	81
खाने योग्य शुद्ध फल एवं सब्जी	87
खाद्य वस्तुओं में मिलावट	87
आहार शुद्धि	90
आहार सम्बन्धी निर्देश	92
चौका शुद्धि	103
अध्याय तृतीय : कर्म सिद्धान्त : एक वैज्ञानिक विवेचन	
कर्म का स्वरूप	108
आत्मा और कर्म का संबंध	115
क्लोनिंग क्या है?	120
अध्याय चतुर्थ : षड्द्रव्य विवेचन	
द्रव्य का स्वरूप	134
द्रव्यों के भेद	139
पुद्गल द्रव्य और विज्ञान	143
अणु, स्कन्ध और विज्ञान	144
नाभिकीय रूपान्तरण और अणु, स्कन्ध की उत्पत्ति	146
उपसंहार	161
संदर्भ ग्रन्थ सूची	162

अध्याय प्रथम

जैनधर्म : एक वैज्ञानिक धर्म

जैन का अर्थ :

जैन शब्द जिन से बना है। जिन का अर्थ है-जीतने वाला। जो अपनी इन्द्रियों, मानसिक विकारों, इच्छाओं, वासनाओं को जीतता है, वह जिन है। जिन कोई ईश्वरीय अवतार नहीं है, अपितु काम-क्रोधादिक विकारों को जीतने वाला सामान्य मनुष्य ही है। जिनत्व की प्राप्ति से पूर्व वे भी साधारण मनुष्य थे। हम जैसे साधारण प्राणी भी अपनी आध्यात्मिक साधना द्वारा जिनत्व को उपलब्ध कर सकते हैं। प्रत्येक मनुष्य में जिन बनने की शक्ति प्रच्छन्न रूप से विद्यमान है। अपनी साधना के द्वारा उस प्रच्छन्न शक्ति की अभिव्यक्ति ही जिनत्व है।

जिन के अनुयायी ही जैन कहलाते हैं। जैन का अर्थ है-जिन का अनुशरण, अनुगमन करने वाला, जिन के चरण चिह्नों पर चलने वाला। जैसे बुद्ध द्वारा प्रवर्तित धर्म बौद्ध धर्म, ईसा के द्वारा उपदिष्ट धर्म ईसाई धर्म कहलाता है। उसी प्रकार जिन द्वारा प्रवर्तित धर्म जैनधर्म कहलाता है। जैसे-शिव और विष्णु को इष्ट मानकर चलने वाले शैव और वैष्णव कहलाते हैं, उसी प्रकार जिन को इष्ट मानकर चलने वाले जिन के उपासक जैन कहलाते हैं।

धर्म का अर्थ :

धर्म का अर्थ धारण करना है अर्थात् जो सुख की प्राप्ति कराये और दुःख से बचाये उसे धर्म कहते हैं। आचार्य समन्तभद्रस्वामी ने रत्नकरण्डक श्रावकाचार में कहा है कि-

देशयामि समीचीनं धर्मं कर्म निर्वहणम्।

संसार दुःखतः सत्त्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे ॥'

अर्थात् जो जीवों के कर्म नाश करने में सहायक तथा संसार रूपी दुःख से निकालकर सुख में धरता है, उसे धर्म कहा है। धर्म से जीव अपने आचरण को सुधार कर परम पद को प्राप्त कर सकता है। धर्म व्यक्ति के आचरण को बलवती बनाता है।

दर्शन का अर्थ :

मनुष्य चिंतनशील प्राणी है। उसकी प्रवृत्ति खोजी रही है। उसने सदा से जीव और जगत्, चित् और अचित्, सत्ता और परमसत्ता के विषय में चिंतन किया है। जो कुछ भी उसको तर्क, बुद्धि और अंतर्दृष्टि से अधिगत हुआ, वही दर्शन है, दर्शन का अर्थ है दिव्यदृष्टि।

दर्शन की अनेक धाराएँ हैं। उनका वर्गीकरण भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के रूप में किया जा सकता है। जैनदर्शन अध्यात्मवादी दर्शन है। भारतीय दर्शनों में जैनदर्शन का अपना एक विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थान है। आचार में अहिंसा, विचार में अनेकान्त, वाणी में स्याद्वाद और समाज में अपरिग्रह जैनदर्शन के चार महान् स्तम्भ हैं। जिन पर जैनदर्शन का महाप्रासाद खड़ा है। जैनदर्शन एक सम्पूर्ण जीवन दर्शन है। यह केवल कल्पनाओं के अनन्त आकाश में विचरण ही नहीं करता, वरन् उन विमल विचारों को जीवन के प्रत्येक व्यवहार में प्रतिफलित भी करना चाहता है। दर्शन विभिन्न बिन्दुओं के वैचारिक पक्ष का नाम है, जबकि धर्म उसके आचारात्मक पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है। आत्मा क्या है? परलोक क्या है? विश्व क्या है? ईश्वर क्या है? आदि जिज्ञासाओं का समाधान दर्शन से ही किया जाता है। दर्शन के ही माध्यम से जीवात्मा अपनी अनन्त शक्ति को पहचानकर परमात्म-दशा को प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त करता है। यद्यपि धर्म और दर्शन अलग-अलग हैं,

फिर भी इन दोनों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। विचारों का प्रभाव मनुष्य के आचरण पर अवश्य पड़ता है तथा व्यक्ति का आचार ही व्यक्ति के विचारों को अभिव्यक्ति दे सकता है। आचार के बिना विचार साकार रूप ग्रहण नहीं कर सकता। एक-दूसरे के अभाव में दोनों अधूरे और एकांगी हैं। व्यक्ति के आचार और विचारों को स्वपर हितकारी बनाकर उनका सम्यक् समायोजन ही धर्म का परम ध्येय है।

जैनधर्म भाव प्रधान धर्म है जबकि दर्शन भावना प्रधान है। जैनधर्म में साधना को प्रमुखता दी गई है। इसमें जीवन के दुःखों को दूर करना ही दर्शन का मूल उद्देश्य है। भारतीय दर्शनों के अनुसार केवल सत्य की खोज और उनका ज्ञान प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं है। किन्तु उसे आत्मसात् कर तदनुकूल जीना भी आवश्यक है। यही कारण है कि भारत में धर्म और दर्शन सहचर और सहगामी रहे हैं। दर्शन सत्ता की मीमांसा करता है और उसके स्वरूप को तर्क एवं विचार से ग्रहण करता है, जिससे कि मोक्ष की उपलब्धि हो। धर्म उस तत्त्व को प्राप्त करने का व्यवहारिक उपाय है। दर्शन हमें आदर्श लक्ष्य को बताता है, धर्म उनका क्रियान्वयन करता है। हेय को छोड़ता है, उपादेय को ग्रहण करता है, दर्शन और धर्म दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

जैनधर्म का इतिहास :

भारत धर्म प्रधान देश है। अनादिकाल से ही यहाँ के अनेक तत्त्व चिंतकों ने जीवन और जगत् के संबंधों को व्याख्यापित किया है, उसके रहस्य को समझा है। व्यक्ति के सुख-दुःख, लाभ-हानि, जीवन-मरण, संयोग-वियोग के कारणों पर उनका ध्यान गया। उन्होंने व्यक्ति के रागद्वेषादिक द्वन्द्वों तथा उसके जन्म और मृत्यु के चक्र से ऊपर उठने के मार्ग की गवेषणा की है। जिस प्रकार अपने दीर्घकालीन जीवन के अनेक प्रयोगों के बाद कोई निष्पत्ति वैज्ञानिकों के हाथ लगती है, वे वस्तु की तह में जाकर उसके मर्म को पकड़ते हैं, तब उन्हें कोई सूत्र मिलता है। ठीक

उसी तरह ऐहिक चिंताओं से मुक्त तत्त्व दृष्टाओं ने अपनी आत्मा के अंतर्मथन से जो नवनीत प्राप्त किया है, धर्म उसकी ही अभिव्यक्ति है, उसके निरूपण के लिए विविध दर्शनों की उत्पत्ति हुई है।

जैनधर्म का उद्भव :

जैन परम्परा के अनुसार जैनधर्म अनादि से है, जो समय-समय पर उत्पन्न होने वाले तीर्थकरों द्वारा प्रवर्तित होता रहा है। इस कालचक्र में जैनधर्म का प्रवर्तन प्रथम तीर्थकर भगवान् आदिनाथ ने किया। तीर्थकर ऋषभदेव का काल निर्णय आज की संख्या में नहीं किया जा सकता। वे बहुत प्राचीन हैं। ऋग्वेद की अनेक ऋचाओं में ऋषभदेव का सम्मानपूर्वक स्मरण किया गया है। भागवत् में भी जैनधर्म के संस्थापक ऋषभदेव का उल्लेख है² पुराण साहित्य में भी ऋषभदेव का उल्लेख है। इसके पुरातात्विक सामग्री, ऐतिहासिक अभिलेख एवं साहित्यिक संदर्भ उपलब्ध हैं। इन्हीं के आधार पर अनेक प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों ने अपने गवेषणात्मक निष्कर्षों में यह बात स्थापित की है कि जैनधर्म प्रागैतिहासिक धर्म है। इसके आद्य प्रवर्तक ऋषभदेव रहे हैं।

जैन परम्परागत इतिहास :

जैन अनुश्रुतियाँ भारत का इतिहास उस समय से प्रस्तुत करती हैं। जब आधुनिक नागरिक सभ्यता का विकास नहीं हुआ था। उस समय व्यक्ति प्रायः जंगलों में रहते थे। मनुष्य ग्राम व नगरों में नहीं बसते थे। लोग न खेती करना जानते थे, न पशु पालन, न ही कोई उद्योग धन्धे। उस समय के लोग अपने खान-पान आदि समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति प्राकृतिक कल्पवृक्षों से कर लिया करते थे। उस समय न कोई समाज व्यवस्था थी, न ही पारिवारिक सम्बन्ध, माता-पिता युगल पुत्र-पुत्री को जन्म देकर दिवंगत हो जाते थे। पुराणकारों ने उक्त व्यवस्था को भोगभूमि व्यवस्था कहा है। धीरे-धीरे उक्त व्यवस्था में परिवर्तन हुआ और उस युग का आरम्भ हुआ जिसे पुराणकारों ने कर्मभूमि कहा है। इसे हम आधुनिक

सभ्यता का प्रारम्भ भी कह सकते हैं। कल्पवृक्षों से फल प्राप्ति में कमी आने लगी। फलतः लोग एक-दूसरे से झगड़ने लगे। शीत-तुषारादि की बाधाएँ सताने लगी। जंगली पशुओं का आतंक बढ़ने लगा। उस समय क्रमशः 14 कुलकर हुए। जिन्होंने तत्कालीन समस्याओं का समाधान कर समाज को नई व्यवस्था दी। ये कुलकर ही मानव सभ्यता के सूत्रधार थे। कुलकरों ने प्राकृतिक परिवर्तन से चकित और चिंतित मानव समूह को प्रकृति का रहस्य बताया। उन्होंने मानव और प्रकृति के संबंधों को उद्घाटित कर मनुष्य को जीने की कला सिखाई एवं समाज का ढाँचा तैयार कर विवेक एवं विचार की शिक्षा दी। जैन परम्परा में कुलकरों का वही स्थान है, जो वैदिक परम्परा में मनुओं का है। मनुओं की संख्या भी चौदह बताई गई है। कुलकरों ने लोगों को हिंसक पशुओं से रक्षा का उपाय बताया। भूमि, वृक्षों की वैयक्तिक स्वामित्व की सीमाएँ निर्धारित की। गाय, बैल, हाथी, घोड़ा आदि वन्य पशुओं का पालन कर उन्हें वाहन के उपयोग में लाना सिखाया। बाल-बच्चों का लालन पालन एवं उनके नामकरण आदि का उपदेश दिया। शीत-तुषारादि से अपनी रक्षा करना सिखाया। नदियों को नौकाओं द्वारा पार करना, पहाड़ों पर सीढ़ियाँ बनाकर चढ़ना, वर्षा से छत्रादिक धारण कर अपनी रक्षा करना सिखाया और अन्त में कृषि द्वारा अनाज उत्पन्न करने की कला सिखाई। इसके बाद वाणिज्य, शिल्प आदि वे सब कलाएँ व उद्योग धन्धे हुए जिनके कारण यह भूमि कर्मभूमि कहलाने लगी।

इस प्रकार सभी कुलकरों ने अपने-अपने समय में समाज को सभ्यता का कोई न कोई शिक्षण दिया, जिससे आधुनिक सभ्यता का विकास होने लगा। कृषि और औद्योगिक सभ्यता की ओर मनुष्य को प्रवृत्त करने का श्रेय कुलकर परम्परा को ही है। ये कुलकर ही ग्राम और नगर संस्कृति के जनक हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से विद्वानों ने इस काल को पूर्व पाषाण युग और उत्तर पाषाण युग का समन्वित रूप कहा है।

चौदह कुलकरों के पश्चात् जिन महापुरुषों ने कर्मभूमि की सभ्यता के युग में धर्मोपदेश व अपने चरित्र द्वारा अच्छे बुरे का भेद सिखाया, ऐसे 63 महापुरुष हुए, जो शलाका पुरुष अर्थात् विशेष गणनीय पुरुष माने गये हैं। शलाका पुरुषों का अर्थ उन महापुरुषों से है, जो सभी तरह की सामाजिक व्यवस्था एवं वैयक्तिक जीवनोत्थान में योगदान देते हैं। सामाजिक चेतना का विकास और धर्मचक्र का प्रवर्तन भी इन्हीं महापुरुषों द्वारा होता है।

चौदहवें कुलकर नाभिराज और उनकी पत्नी मरुदेवी से ऋषभदेव उत्पन्न हुए। इनका जन्म अयोध्या में हुआ था। इन्हें वृषभनाथ भी कहा जाता है। चौबीस तीर्थकरों में से आदि होने के कारण इन्हें आदिनाथ भी कहा जाने लगा। जैन मार्ग का प्रारम्भ यहीं से माना जाता है। अपने पिता के उत्तराधिकारी के रूप में ये राज्याधीन हुए। उन्होंने असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या, वाणिज्य आजीविका के साधनभूत इन छह कर्मों की विशेष रूप से व्यवस्था की तथा देश और नगरों को सुविभाजित कर सम्पूर्ण भारत को 52 जनपदों में विभाजित किया। लोगों के लिए कर्मों के आधार पर इन्होंने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन तीन वर्णों की व्यवस्था की, इसलिए प्रजापति कहा गया। इन्होंने अपनी ब्राह्मी और सुंदरी नामक दोनों पुत्रियों को क्रमशः अंक और अक्षर विद्या सिखाकर समस्त विद्याओं में निष्णात् किया। ब्राह्मी लिपि का प्रचलन भी तभी से हुआ।¹³ आज की नागरी लिपि को विद्वान् उसका ही विकसित रूप मानते हैं। इन्हीं आदिनाथ भगवान् को अन्य दर्शनों में विभिन्न नामों से स्मरण किया जाता है। पुरातत्त्ववेत्ता भी इनको प्राचीन काल का जैन देवता स्वीकार करते हैं। सिन्धुघाटी सभ्यता में भी इनके अवशेष प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त मथुरा के कंकाली टीला एवं अन्य स्थानों से प्राप्त ईस्वी सन् से शताब्दियों पूर्व की निर्मित प्रतिमाओं से भी शेष तीर्थकरों का ऐतिहासिक अस्तित्व प्रमाणित होता है।¹⁴

भगवान् आदिनाथ के बाद भी जैनधर्म के प्रवर्तक 23 तीर्थंकर हुए, जिनमें से दूसरे अजितनाथ, चौथे अभिनंदननाथ, पाँचवे सुमतिनाथ और चौदहवें अनन्तनाथ का जन्म अयोध्या में हुआ, तीसरे संभवनाथ का जन्म श्रावस्ती में, पद्मप्रभ का कौशाम्बी में, सुपार्श्वनाथ तथा पार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी में हुआ, चन्द्रप्रभ का जन्म चंद्रपुरी में, पुष्पदंत का काकन्दी में, शीतलनाथ का भद्वलपुरी में, श्रेयांसनाथ का सिंहपुरी (सारनाथ) में, वासुपूज्य का चम्पापुर में, विमलनाथ का कंपिला में, धर्मनाथ का रत्नपुर में, शान्तिनाथ, कुंथुनाथ व अरनाथ का हस्तिनापुर में, मल्लिनाथ व नमिनाथ का मिथिलापुरी में, मुनिसुव्रतनाथ का राजगृही में, नेमिनाथ का शौरीपुर में, महावीर भगवान् का जन्म कुंडलपुर में हुआ।

भगवान् महावीर के सम्बन्ध में जैन और बौद्ध साहित्य से जो कुछ जानकारी प्राप्त होती है, उससे यह स्पष्ट पता चलता है कि महावीर एक महापुरुष थे और उस समय के पुरुषों पर उनका मानसिक और आध्यात्मिक प्रभाव बड़ा गहरा था। उनके प्रभाव, दीर्घ दृष्टि और निस्पृहता का ही यह परिणाम है, जो आज भी जैनधर्म अपने जन्मस्थान भारत देश में बना हुआ है। जबकि बौद्धधर्म शताब्दियों पूर्व यहाँ से लुप्त सा हो गया। भगवान् महावीर का अनेक राजघरानों पर भी गहरा प्रभाव था। भगवान् महावीर ज्ञातृवंशी के थे और उनकी माता लिच्छवि गणतंत्र के प्रधान चेटक की पुत्री थी। ईसा से पूर्व छठी शताब्दी में पूर्वी भारत में लिच्छवि राजवंश महान और शक्तिशाली था। डॉ० याकोवी ने लिखा है कि जब चम्पा के राजा कुणिक ने एक बड़ी सेना के साथ राजा चेटक पर आक्रमण करने की तैयारी की तो चेटक ने काशी और कौशल के अट्ठारह राजाओं को तथा लिच्छवि और मल्लों को बुलाया और उनको पूछा कि आप लोग कुणिक की माँग पूरा करना चाहते हैं अथवा उससे लड़ना चाहते हैं? महावीर का निर्वाण होने पर उनकी स्मृति में उक्त अट्ठारह राजाओं ने मिलकर एक महोत्सव भी मनाया था।⁵ इससे स्पष्ट है कि उस समय के प्रमुख राजवंश प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से महावीर से प्रभावित थे।

भगवान् महावीर के निर्वाणोपरान्त उनके प्रधान गणधर गौतम जैनसंघ के नायक बने। महावीर का शिष्यत्व ग्रहण करने के पूर्व वे वेद-वेदान्तों के ज्ञाता, प्रकाण्ड ब्राह्मण पण्डित थे। भगवान् महावीर के निर्वाण के दिन ही इन्हें सायं को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। 12 वर्ष तक संघ इनके नेतृत्व में रहा। तत्पश्चात् वीरनिर्वाण संवत् 12 में निर्वाण को प्राप्त हुए। इनके बाद सुधर्माचार्य को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। 22 वर्षों तक संघ इनके नेतृत्व में रहा। इनके निर्वाण के उपरान्त जम्बूस्वामी संघ के नायक बने। ये चंपानगरी में एक कोट्याधीश श्रेष्ठी के पुत्र थे और महावीर स्वामी के प्रभाव से शिष्य हो गये थे। उन्होंने 39 वर्ष तक धर्म प्रवचन दिया और अन्त में मथुरा चौरासी नामक स्थान से निर्वाण प्राप्त किया। उनके पश्चात् क्रमशः विष्णुकुमार, नन्दिपुत्र, अपराजित, गोवर्धन और भद्रबाहु ये पाँच श्रुतकेवली हुए, जिनके नेतृत्व में संघ चला। इन पाँचों का कालयोग 100 वर्ष तक था। इन्हें सम्पूर्ण श्रुत का ज्ञान था।^{१०} इनमें अंतिम श्रुतकेवली भद्रबाहु का जैनधर्म के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके पूर्व समस्त जैन संघ अखंड और अविभक्त था, किन्तु इनके स्वर्गवास के उपरान्त साधुओं में मतभेद, गणभेद आदि प्रारम्भ हो गये। दिगम्बर और श्वेताम्बर रूप विभाजन का बीजारोपण भी यहीं पर हुआ था। इनमें दिगम्बर सम्प्रदाय में भट्टारकपंथ, तेरहपंथ, बीसपंथ, तारणपंथ, कांजीपंथ आदि पंथ का उद्गम हुआ तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय चैत्यवासी, स्थानकवासी, तेरापंथ आदि सम्प्रदाय में विभक्त हो गया। आचार्य भद्रबाहु स्वामी के पश्चात् जैनधर्म की स्थिति निम्न रह गयी और वह कुछ स्थानों में रह गया, जिनमें उत्तरभारत व दक्षिण भारत मुख्य थे।

उत्तरभारत में जैनधर्म का प्रभाव विभिन्न प्रांतों में तथा मुख्य राजघरानों में विशेष रूप से रहा। विभिन्न बौद्ध इतिहासज्ञों के कथन से पता चलता है कि बुद्ध निर्वाण के पश्चात् प्रथम शती में उत्तरभारत के विभिन्न स्थानों में जैन लोग प्रमुख थे। चीनी यात्री ह्वेसांग ईस्वी सन् सातवीं

शती में भारत आया था। वह अपने यात्रा विवरण में नालंदा के विहार का वर्णन करते हुए लिखता है कि निर्ग्रन्थ (जैन) साधु ने, जो ज्योतिष विद्या का जानकार था, नये भवन की सफलता की भविष्यवाणी की थी।⁷ इससे प्रकट है कि उस समय मगध राज्य में जैनधर्म फैला हुआ था। जैनधर्म की उन्नति का सूचक दूसरा प्रमाण अशोक की प्रसिद्ध घोषणा है, जिसमें निर्ग्रन्थों को दान देने की आज्ञा है। जो बतलाती है कि अशोक के समय में जैन जो पहले निर्ग्रन्थ के नाम से विख्यात थे,⁸ योग्य माने जाते थे तथा इतने प्रभावशाली थे कि अशोक ने राज्य घोषणा में उनका मुख्य रूप से निर्देश करना आवश्यक समझा। उत्तर भारत में जैनधर्म की उन्नति की दृष्टि से कलिंग का नाम उल्लेखनीय है। ईस्वी पूर्व दूसरी शताब्दी का प्रसिद्ध खारबेल शिलालेख कलिंग में जैनधर्म की प्रगति को प्रामाणित करता है। श्री रंगास्वामी आयंगर के मतानुसार बौद्धधर्म के प्रचार के प्रति अशोक ने जो उत्साह दिखलाया। उसके फलस्वरूप जैनधर्म का केन्द्र मगध से उठकर कलिंग चला गया जहाँ ह्येसांग के समय तक जैनधर्म फैला हुआ था। खारबेल शिलालेख की तरह प्रसिद्ध मथुरा के शिलालेख प्रकट करते हैं कि ईसा की प्रथम शताब्दी से पहले से मथुरा जैनधर्म का एक मुख्य केन्द्र था।

इस प्रकार भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् लगभग पाँच शताब्दियों तक जैनधर्म उत्तरभारत के विभिन्न प्रदेशों में बड़ी तेजी के साथ उन्नति करता रहा, किन्तु सातवीं शताब्दी के पश्चात् उसका पतन प्रारम्भ हो गया। इसके बाद भी उत्तरभारत में भगवान् महावीर के बाद जैनधर्म को अनेक प्रसिद्ध राजाओं का आश्रय प्राप्त था। जिनमें खारबेल, अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य, बिम्बसार (श्रेणिक), अजातशत्रु (कुणिक), चेटक, उदयन, पुष्पमित्र, आदि राजाओं ने जैनधर्म को अपनाकर उसका गौरव बढ़ाया। भगवान् महावीर के पश्चात् जैनों का अधिपत्य बना रहा। इसमें उड़ीसा में सम्राट खारबेल, गुजरात में अमोघवर्ष (गुर्जरनरेन्द्र)⁹, मूलराज, कुमारपाल आदि राजाओं ने जैनधर्म को आश्रय दिया। राजस्थान में चित्तौड़ का

कीर्तिस्तम्भ, केशरियाजी का आदिनाथ मंदिर, जैसलमेर, जयपुर के प्राचीन जैन ग्रंथ भंडार जैनधर्म के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। मध्यप्रदेश में जैनतीर्थों की अधिकता तथा मध्यप्रदेश के कलचुरी राजवंशीयों का राष्ट्रकूट जैन राजाओं से संबंध, जैनधर्म की उन्नति की निशानी है। उत्तरप्रदेश में मथुरा जैनधर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था इसी प्रकार उत्तर भारत में अन्य क्षेत्र भी जैनों के केन्द्र माने जाते थे।

उत्तरभारत के समान दक्षिण भारत में भी जैनधर्म की स्थिति सुदृढ़ थी। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में उत्तरभारत में 12 वर्ष का भयंकर दुर्भिक्ष पड़ने पर जैनाचार्य भद्रबाहु ने अपने विशाल जैन संघ के साथ दक्षिण भारत की ओर प्रयाण किया था। इससे स्पष्ट है कि दक्षिण भारत में उस समय भी जैनधर्म का अच्छा प्रचार था और भद्रबाहु को पूर्ण विश्वास था कि वहाँ उनके संघ को किसी प्रकार का कष्ट न होगा। यदि ऐसा न होता तो वे इतने बड़े संघ को दक्षिण भारत की ओर ले जाने का साहस न करते। जैन संघ की इस यात्रा से दक्षिण भारत में जैनधर्म को और भी अधिक फलने और फूलने का अवसर मिला।

श्रमण संस्कृति वैदिक संस्कृति से हमेशा उदार रही है। उसमे भाषा और अधिकार का वैसा बंधन नहीं रहा जैसा वैदिक संस्कृति में पाया जाता है। जैन तीर्थंकरों ने सदा लोकभाषा को अपने उपदेश का माध्यम बनाया। जैन साधु जैनधर्म के चलते फिरते प्रचारक होते हैं। वे जनता से अपनी शरीर यात्रा के लिए दिन में एक बार जो रूखा सूखा किन्तु शुद्ध भोजन लेते हैं। उसका कई गुना मूल्य सत्शिक्षा और सदुपदेश के रूप में जनता को चुका देते हैं। शेष समय में साहित्य का सृजन करके उसे भावी संतान के लिए छोड़ जाते हैं। ऐसे कर्मठ और जनहित निरत साधुओं का समागम जिस देश में हो उस देश में उनके प्रचार का कुछ प्रभाव न हो यह संभव नहीं। फलतः उत्तर भारत के जैन संघ की दक्षिण यात्रा ने दक्षिण भारत के जीवन में एक क्रान्ति पैदा कर दी। प्रो०

रामस्वामी आर्यंगर अपनी स्टडीज इन साउथ इंडियन जैनियम पुस्तक में लिखते हैं कि सुशिक्षित जैन साधु छोटे छोटे समूह बनाकर समस्त दक्षिण भारत में फैल गये और दक्षिण की भाषाओं में अपने धार्मिक साहित्य का निर्माण करके उसके द्वारा अपने धार्मिक विचारों को धीरे धीरे किन्तु स्थायी रूप में जनता में फैलाने लगे। किन्तु यह कल्पना करना कि ये साधु साधारणतया लौकिक कार्यों में उदासीन रहते थे, गलत है। एक सीमा तक यह सत्य है कि ये संसार में संबद्ध नहीं होते थे, किन्तु मेगस्थनीज के विवरण से हम जानते हैं कि ईस्वी पूर्व चतुर्थ शताब्दी तक राजा लोग अपने दूतों के द्वारा वनवासी जैन श्रमणों से राजकीय मामलों में स्वतंत्रता पूर्वक सलाह मसविरा करते थे। जैन गुरुओं ने राज्यों की स्थापना की थी और वे राज्य शताब्दियों तक जैन धर्म के प्रति सहिष्णु बने रहे, किन्तु जैनधर्म ग्रंथों में रक्तपात के निषेध पर जो अत्यधिक जोर दिया गया उसके कारण समस्त जैन जाति राजनैतिक अधोगति को प्राप्त हो गई।¹⁰ इस कारण भद्रबाहु स्वामी के दक्षिण आ जाने से उत्तरभारत के समान दक्षिण भारत में भी धर्म की प्रभावना होने लगी। तथा दक्षिण भारत जैन संस्कृति का संरक्षक और संवर्धक बन गया।

जैनधर्म के प्रसार की दृष्टि से दक्षिण भारत में तमिल तथा कर्नाटक दो प्रान्त मुख्य रूप से थे। तमिल प्रान्त में चोल और पाण्ड्य नरेशों ने जैनधर्म को अच्छा आश्रय दिया। इनकी राजधानी मदुरा थी जो उस समय जैन नगरी के नाम से जानी जाती थी। इस समय पूज्यपाद स्वामी के शिष्य वज्रनंदि ने पाण्ड्यों की राजधानी मदुरा में एक जैन संघ की स्थापना की थी। तमिल वेद कहलाने वाला नीतिशास्त्र कुरल काव्य भी जैनसाधु के द्वारा लिखा गया। ईसा की दसवीं शताब्दी तक राज्य करने वाले महाप्रतापी पल्लव राजा भी जैनों पर कृपा दृष्टि रखते थे। इनकी राजधानी कांची सभी धर्मों का स्थान थी। चीनी यात्री हेनसांग सातवीं शताब्दी में कांची गया था। उसने इस नगरी में फलते फूलते हुए जिन धर्मों को देखा उनमें वह जैनों का भी नाम लेता है।

इसी प्रकार गंग वंश, होयसल वंश, राष्ट्रकूट वंश, कदम्बवंश, चालुक्यवंश आदि वंशों ने जैनधर्म की पताका को विश्व तक फैलाया। इन्हीं गंग वंशियों में राजा राजमल्ल के मंत्री तथा सेनापति चामुण्डराय ने श्रवणबेलगोला में विश्व प्रसिद्ध बाहुवली भगवान् की अद्भुत प्रतिमा की स्थापना कराई। इससे यह प्रतीत होता है कि जैनधर्म भारत के प्रत्येक स्थल पर प्रभावकारी रहा है।

जैनधर्म के सिद्धान्तों की सिद्धि

निगोदिया जीव एवं आधुनिक विज्ञान

जैनधर्म अध्यात्म परक धर्म है जहाँ आत्मा की शुचिता को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। इस शुचिता को प्राप्त करने के लिए जैनधर्म गुरुओं ने मनुष्य को संसार की वास्तविकता का बोध कराने का हर संभव प्रयत्न किया है। प्रकृति का शायद ही कोई ऐसा तत्त्व हो जो जैन मनीषियों के ज्ञान से अछूता रहा हो। जगत में स्थित जड़ और चेतन का अत्यन्त तर्कसंगत, व्यावहारिक और व्यवस्थित वर्णन जैनधर्म में मिलता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि जीवों से लेकर अत्यन्त सूक्ष्म निगोदिया जीवों तक का वर्णन जैन आचार्यों ने किया है।

आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से अभी तक ज्ञात सूक्ष्मतम जीव, जीवाणु एवं विषाणु वायरस हैं। निगोदिया जीवों की तरह यह भी जल, थल, और नभ में प्रत्येक स्थान पर मौजूद रहते हैं। माइकोप्लाज्मा भी अत्यन्त सूक्ष्म जीव है। यदि उक्त सूक्ष्म जीवों की तुलना जैन धर्म में वर्णित निगोदिया जीवों से की जाये तो समानताएँ और असमानताएँ दोनों प्राप्त होती हैं। इस विषय में गहन शोध और अध्ययन की आवश्यकता है।

जैनधर्म में निगोदिया जीव को वनस्पति एकेन्द्रिय जीवों के अंतर्गत लिया गया है। जो अनन्तों जीवों को एक निवास दे, उसे निगोद

कहते हैं। इस निगोद शरीर में बसने वाले अनन्त जीवों को निगोदिया जीव कहते हैं।¹¹ ये निगोदिया जीव सूक्ष्म और स्थूल दो प्रकार के होते हैं। सूक्ष्म निगोदिया जीव वे कहलाते हैं जो किसी के द्वारा बाधित नहीं होते और न ही किसी को बाधा पहुँचाते हैं। इसलिए ये सर्वत्र पाये जाते हैं। बादर निगोदिया जीव बाधित होते हैं और बाधा भी पहुँचाते हैं। पर बादर होने के बावजूद भी वास्तव में ये भी इतने सूक्ष्म होते हैं कि सामान्य आँखों से दिखाई नहीं पड़ते। इन साधारण कहे जाने वाले निगोदिया जीवों की अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग या उससे भी सूक्ष्म होती है।¹²

आधुनिक विज्ञान में सूक्ष्म जीव

आधुनिक जीव विज्ञान में सूक्ष्म जीवों का अत्यन्त महत्त्व है। प्रकृति के विभिन्न प्रकार के वातावरण में पाये जाने वाले सूक्ष्म जीव मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं, बैक्टेरिया, वायरस, माइकोप्लाज्मा। विज्ञान में कथित सूक्ष्म जीव जैनदर्शन में बादर एकेन्द्रिय या विकलत्रय की श्रेणी में गिने जाते हैं।

बादर निगोदिया जीव और सूक्ष्म जीव में समानताएँ

1. बैक्टेरिया और वायरस आदि सूक्ष्म जीवों की तरह बादर निगोदिया जीव भी वातावरण में सर्वत्र पाये जाते हैं।
2. आधुनिक सूक्ष्म जीवों की तरह बादर निगोदिया जीव भी अनन्त होते हैं एवं एक ही पोषक कोशिका या सम्पूर्ण शरीर में रहते हैं वायरस प्रायः निष्क्रिय ही रहते हैं परन्तु किसी बैक्टेरिया के शरीर में पहुँच कर वह अनन्त हो जाते हैं और उसी शरीर में निवास करते हैं।
3. बैक्टेरिया की अनेक प्रजातियों के समान बादर निगोदिया जीव भी गोलाकार होते हैं। वायरस तो बादर निगोदिया जीवों के समान आयताकार और गोलाकार दोनों प्रकार के होते हैं।

4. जैनधर्म के अनुसार बोने के अन्तर्मुहुर्त पर्यन्त सभी वनस्पतियाँ अप्रतिष्ठित होती हैं। बाद में बादर निगोदिया जीवों के निवास बना लेने से सप्रतिष्ठित हो जाती हैं। आधुनिक वनस्पति विज्ञान में फली, दाल, मटर आदि के पौधों के बीजों को बोने के उपरान्त जैसे ही पौधा बड़ा होने लगता है इसकी जड़ों में छोटी छोटी गांठें बन जाती हैं एवं इन गांठों में बैक्टेरिया अपना निवास बना लेते हैं।
5. आधुनिक बैक्टेरिया और वायरस की तरह बादर निगोदिया जीव भी इतनी तीव्र गति से जन्म लेते हैं एवं वृद्धि करते हैं कि यह देख पाना असंभव हो जाता है कि कौन-सा जीव नया है और कौन सा पुराना। जिस प्रकार एक शरीर में बादर निगोदिया जीव एक साथ ही जन्म -मरण, श्वासोच्छ्वास एवं अन्य क्रियाएँ करते हैं, उसी तरह अधिकांश बैक्टेरिया एवं वायरस की गतिविधियाँ भी समान रूप से चलती हैं।
6. अधिकांश बैक्टेरिया वर्धी या अलैंगिक प्रजनन करते हैं। यही गुण बादर निगोदिया जीव में भी पाया जाता है। सभी बादर निगोदिया सम्मूर्च्छन जन्म वाले हैं।
7. आधुनिक सूक्ष्म जीवों और बादर निगोदिया जीवों में अन्य बड़े जीवों की तरह तंत्रिका तंत्र नहीं होता, यह गुण उनके समान रूप से बादर जीव होने का संकेत देता है।

क्लोनिंग तथा कर्म सिद्धान्त

क्लोनिंग ने वैज्ञानिकों तथा बुद्धिजीवियों को तो प्रभावित किया ही है, साथ ही दार्शनिकों एवं धार्मिक नेताओं को भी आश्चर्य में डाल दिया है। जो प्रचलित धार्मिक धारणाएँ हैं उनके लिए भी क्लोनिंग एक चुनौती भरा विषय बन गया है इसलिए क्लोनिंग को धार्मिक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करना अपेक्षित हो गया है। इस चर्चा को आगे बढ़ाने से पहले

हमें क्लोनिंग तथा उसकी तकनीक के बारे में जानना होगा। जिसका वर्णन तृतीय अध्याय में दिया गया है।

जैनदर्शन और क्वाण्टम सिद्धान्त

जैनदर्शन के अनुसार कार्य के प्रति नियामक हेतु को कारण कहते हैं।¹³ वह दो प्रकार का होता है—अंतरंग और बहिरंग। अंतरंग कारण को उपादान और बहिरंग कारण को निमित्त कहते हैं। जो कार्य रूप परिणमता है वह उपादान कारण होता है और उसमें जो सहायक होता है वह निमित्त कारण कहलाता है।

सन् 1925 तक कारण-कार्य सिद्धान्त भौतिक विज्ञान में स्वीकृत होता रहा, किन्तु आधुनिक क्वाण्टम यांत्रिकी में इस नियत कारण कार्य सिद्धान्त को नये ढंग से व्याख्यायित किया गया है। क्वाण्टम यांत्रिकी के अनुसार सभी आवश्यक कारणों के मिलते हुए भी अभीष्ट कार्य होने की शत प्रतिशत गारण्टी नहीं है। समान कारणों के होते हुए भी कार्य असमान हो सकते हैं। इतना ही नहीं इस अनोखे क्वाण्टम सिद्धान्त में बड़ी शान के साथ अनिश्चितता सिद्धान्त को स्वीकारा गया है। अनिश्चितता सिद्धान्त के अनुसार किसी भी सूक्ष्म कण की स्थिति एवं गति का मापन एक साथ शुद्ध रूप से न तो जाना जा सकता है और न ही बताया जा सकता है।

जैनदर्शन में भी कारण-कार्य व्यवस्था नियति का समर्थन नहीं करती। जैन विचारकों का मानना है कि एक कारण से भी अनेक कार्य होते हुए देखे जाते हैं।¹⁴

क्वाण्टम यांत्रिकी एवं नियत कारण-कार्य सिद्धान्त की रक्षा करने हेतु आइंस्टीन यह खोजते रहे कि सूक्ष्म कणों के व्यवहार को समझने में चूक कहाँ हो रही है। उनके इस प्रश्न का उत्तर जैनदर्शन में मान्य कर्म सिद्धान्त दे सकता है। जैनदर्शन में कर्म को अत्यंत सूक्ष्म पुद्गल कण माना गया है जो प्रत्येक जीव के साथ अनादिकाल से चिपके

हुए हैं और देश काल के अनुरूप अपना प्रभाव दिखाते हैं। जीव इनसे प्रभावित होकर पुनः नये कर्म अर्जित करता है और यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

हम कर्म धूलि को उपकरणों से पकड़ पायें या नहीं किन्तु यह कर्म धूलि प्रयोगकर्ता की भावना के अनुसार प्रयोग को अवश्य प्रभावित करती है। वैज्ञानिक उस कर्म धूलि को गिनना चूक रहे हैं। आज यदा कदा कई वैज्ञानिक स्वीकार करने लगे हैं कि प्रयोग कर्ता की भावना का प्रभाव यंत्रों पर पड़ता है। इस तथ्य का विस्तार से वर्णन द गास्ट इन द एटम¹⁵ नामक पुस्तक में देखा जा सकता है। इस पुस्तक में कर्म धूलि का जिक्र नहीं है किन्तु प्रयोग कर्ता की भावना का प्रभाव प्रयोग पर होता है यह मानकर क्वान्टम यांत्रिकी एवं कारण-कार्य सिद्धान्त को समझने का प्रयास किया गया है।

जैनों के प्रसिद्ध ग्रंथ तत्त्वार्थसूत्र में जैन विचारक उमास्वामी ने कर्म का प्रभाव बताने वाले कई सूत्रों का उल्लेख किया है। किस प्रकार के विचारों से किस प्रकार का प्रभाव पड़ता है। यह बात भी इस ग्रंथ में बड़े विस्तार से कही गयी है। आचार्य उमास्वामी ने कहा है कि अपने में, दूसरे में या दोनों में विद्यमान दुःख, शोक, ताप, आक्रंदन, वध, आदि असाता वेदनीय कर्म के कारण है तथा प्राणी मात्र के प्रति करुणा, त्यागी व्रतीजनों की सेवा दान पुण्य, आत्मनियंत्रण, क्षमा और शुचिता आदि सातावेदनीय कर्म के आस्रव के कारण होते हैं।¹⁶ इन सूत्रों की आंशिक पुष्टि कई प्रयोगों से होती है। डॉ. दीपक चौपड़ा अमरीका में अपने नर्सिंग होम में दवा के अतिरिक्त शुभ विचारों के प्रभाव से ऐसी-ऐसी बीमारियाँ ठीक करते हैं। जिनका मात्र दवा से भी उपचार संभव नहीं है। अपनी इस चिकित्सा पद्धति को वे क्वान्टम चिकित्सा कहते हैं।¹⁷ उनका सिद्धान्त यह है कि दवा के कण, श्वास की वायु के कण, भोजन के कण, अच्छे विचारों के अनुसार शरीर के ऐसे भागों में पहुँच सकते हैं। जहाँ वे बीमारी

घटा सकते हैं। क्वान्टम विशेषण का आधार क्वान्टम यांत्रिकी द्वारा वर्णित सूक्ष्म कणों का संभावनात्मक व्यवहार है। दूसरे शब्दों में दवा से मरीज के ठीक होने की संभावना को बढ़ाने हेतु अतिरिक्त कारण के रूप में वे मनुष्य के सद्विचारों का सहारा लेते हैं। जैनाचार्य उमास्वामी यहाँ यह कहते हैं कि - ये शुभभाव ऐसे कर्म धूलि को आमंत्रित करते हैं जिसका फल मनुष्य के लिए शुभ हो जाता है।

जैनधर्म एवं वनस्पति विज्ञान

जैनदर्शन में वनस्पति के सम्बन्ध में कही गई बातें आज विज्ञान ने यंत्रों के प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दी हैं। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. जगदीश चन्द्र बसु के प्रयोगों ने वनस्पति में चेतना, संवेदना, श्वसन, जन्म, मरण आदि जीवन के सभी गुण सिद्ध किए हैं।¹⁸ वनस्पति के विषय में विज्ञान का कहना है कि वनस्पति में लेश्याएँ, कषायें, संज्ञाएँ और संवेदनाएँ आदि भी पाई जाती हैं। इसलिए हमारे जीवन में पेड़, पौधे उतने ही आत्मीयता के पात्र हैं, जितने हमारे परिवार के सदस्य हैं। इसका विवेचन चतुर्थ अध्याय में किया गया है।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति एवं अहिंसा

चिकित्सा पद्धति विज्ञान की वह शाखा है, जिसमें बीमारियों का इलाज और रोगों की रोकधाम की जाती है। भारत में चिकित्सा की तीन पद्धतियाँ प्रचलित हैं- ऐलोपैथिक, आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक चिकित्सा पद्धति।

एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति पाश्चात्य देशों में प्रारम्भ हुई। सबसे पहले एरिसटोले जो एक स्कालर और फिलॉसफर था, ने एलोपैथिक मेडीसन की शुरुआत की। उसके शिष्य थियोफेरेटस ओथ और हिप्पोक्रेटस थे, जिनके नाम पर हिप्पोक्रेटस ओथ ली जाती है। यह पद्धति सिम्पटम्स अर्थात् तकलीफ के आधार पर विकसित हुई। इसका कोई सैद्धान्तिक

आधार नहीं था इसलिए इसे एलोपैथी कहा गया। एलोपैथी का शाब्दिक अर्थ है, द अदर सफरिंग। आज यह वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति होने पर भी इसी नाम से प्रचलित है।

आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में यद्यपि रोग परीक्षण विधि काफी उन्नत हुई है और शल्य चिकित्सा में भी आश्चर्य जनक सफलता अर्जित की गई है। लेकिन सामान्यतः लोगों के मन में यह बात आती है कि एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में सिर्फ हिंसा ही हिंसा है। इसलिए वर्तमान में इस चिकित्सा पद्धति के विविध क्षेत्रों में अहिंसा की कितनी संभावनायें हैं इस पर विचार विमर्श किया जाना आवश्यक है ताकि आने वाले समय में हम अपनी अहिंसक संस्कृति को जीवित रख सकें।

प्रत्येक चिकित्सा पद्धति में तीन बातें प्रमुख हैं- अध्ययन की विधि, रोग परीक्षण के साधन और उपचार के उपाय एलोपैथी चिकित्सा में अध्ययन के दौरान मेढ़क और केंचुए आदि की चीरफाड़ होती है। पर आने वाले समय में यह सब कम्प्यूटर की मदद से संभव हो सकता है। कहीं-कहीं पर इस बात की शुरूआत भी हुई है। मेडीकल कॉलेज में अध्ययन के दौरान मनुष्य की मृत देह पर भी बहुत से प्रयोग करने पड़ते हैं। इस क्षेत्र में हिंसा से बचाव के लिए लिंब्स एण्ड थिंग्स कम्पनी ने शल्य चिकित्सा से संबंधित शिक्षण प्रशिक्षण कार्य के लिए मानव शरीर जैसी प्रतिमायें तैयार की हैं, जो रंग रूप स्पर्श में एकदम मनुष्य जैसी हैं, जिसके माध्यम से बिना किसी हिंसा के शल्य चिकित्सा का प्रशिक्षण कार्य सम्पन्न किया जा सकता है।

एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति में रोग परीक्षण के क्षेत्र में देखा जाये तो एक्स-रे, अल्ट्रासोनोग्राफी, सी.टी. स्केन, एम.आर.आई., ये सब नॉनइन्वेजिव हैं, जिनमें कहीं कोई हिंसा नहीं है। पेट की बीमारियाँ जैसे अल्सर, पथरी आदि को भी एण्डोस्कोपी की मदद से प्रारंभिक अवस्था में ही पता लगाकर इलाज किया जा सकता है। लेसर रेज और

शॉक बेव्स जैसी आधुनिक शल्य चिकित्सा पद्धति भी अहिंसा का समर्थन करती है।

एलोपैथिक मेडिसिन जिसके माध्यम से रोग का उपचार किया जाता है, अधिकांशतः सिंथेटिक और वनस्पतिजन्य हैं। पशुओं से बनने वाली औषधियों को छोड़कर सभी औषधियाँ अहिंसक हैं। एलोपैथिक मेडिसिन में जो गोलियों का पाउडर जिलेटिन में गूथा जाता है यदि उसके स्थान पर एक विशेष प्रकार की गोंद का उपयोग व्यापक रूप में किया जाने लगे तो उसे भी अहिंसक बनाया जा सकता है।

गढ़ाकोटा मध्यप्रदेश स्थित सोरस लेबोरेटरीज वर्तमान में जिलेटिन मुक्त दवाइयाँ निर्मित कर रही है। जिलेटिन से बनने वाले कैप्सूल का स्थान भी वेजकैप्स ले सकता है, जो अहिंसक है।

सागर स्थित भाग्योदय तीर्थ हास्पिटल में आधुनिक चिकित्सा पद्धति में अहिंसा का द्वार खोला है। इस परिसर के भीतर आधुनिक चिकित्सा पद्धति में अहिंसा की संभावना को मूर्त रूप दिया जा रहा है। आयुर्वेदिक शोध संस्थान, वेजकैप्स का कारखाना और वनौषधियों का विकास आने वाले समय में इस परिसर को गौरवान्वित कर रहे हैं।

चिकित्सालय में सेवा भावना से कार्यरत चिकित्सकों ने एलोपैथिक दवाइयों की एक ऐसी व्यापक सूची तैयार की है जो या तो पशु उत्पादों से निर्मित है या हीमोग्लोबिन की उत्पाद है या पैक्रियाटिन, बाइलसॉल्ट, पैप्सिन इत्यादि से बनी है। इस मानव कल्याण चिकित्सालय का सुदृढ़ संकल्प है कि वह अपने मरीजों को न तो कैप्सूल और न ही इंजेक्शन प्रिस्क्राइव करेगा बल्कि वह अधिकांशतः ऐसी अचूक वैकल्पिक औषधियों का उपयोग करेगा जिनके निर्माण में किसी तरह की हिंसा नहीं होती। इस प्रकार आधुनिक चिकित्सा पद्धति में भी अहिंसा का प्रयोग करके स्वास्थ्य लाभ लिया जा सकता है।

विद्वानों एवं वैज्ञानिकों के जैनधर्म के विषय में विचार

1. प्रो० डॉ० हर्मन जेकोबी- जैनत्व का अपना पराभौतिकी आधार है जो कि इसे ब्राह्मण और बौद्ध दोनों ही व्यवस्थाओं से अलग एक विशिष्ट स्थान दिलाता है, अब मैं यह विचार बिल्कुल नहीं रखता कि जैनत्व हिन्दु या ब्राह्मणवाद से निकला है।¹⁹

2. प्रो० जोसेफ मेरी, ए० बी० एस० जर्मनी- भगवान् महावीर की आदर्श शिक्षाएँ अत्यंत बलशाली, आध्यात्मिक प्रतिक्रियाएँ हैं। उन्होंने अपने जीवन से यह सिद्ध कर दिया है कि आत्मा शरीर की गुलाम नहीं है। उन्होंने भौतिक लालसाओं और इच्छाओं को दुनिया से नष्ट किया है।²⁰

3. प्रो० डॉ० लुईस रिनांड (सोरबोनी युनिवर्सिटी फ्रांस)- नये धार्मिक आंदोलनों की क्या आवश्यकता है। जब कि पीडित मानव जाति के लिए आवश्यक समाधान प्रस्तुत करने में जैनत्व सक्षम है। जैनत्व एक प्राचीन एवं सम्माननीय परम्परा है। विश्व के धर्मों में यह पहला धर्म है जिसने नैतिक जीवन के लिए अहिंसा को प्रमुखता दी।²¹

4. मि० हर्बर्ट वारेन (इंग्लैंड)- भगवान् महावीर का जीवन पूरी तरह सत्य, ईमानदारी एवं पवित्रता से पूर्ण था एवं उनका जीवन समस्त प्राणियों को सुरक्षा देता है। उन्होंने किसी प्रकार की सम्पत्ति का बिल्कुल भी संचय या परिग्रह नहीं किया, यहाँ तक कि वस्त्र भी त्यागे। उनका जीवन उस प्रत्येक व्यक्ति के लिए उदाहरण है जो कि दुःखों से छुटकारा या मुक्ति पाना चाहता है।²²

5. मि० मैथ्यू मेके- जैनियों का संदेश सभी के लिए है, जैनत्व में आपको कोई भी कथन अंधविश्वास के साथ स्वीकार करने को नहीं कहा जाता है। मेरे व्यक्तिगत अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि जैन शिक्षाओं को स्वीकार करने वाले एवं व्यवहार में लाने वाले आनंद की उस दुनिया में प्रवेश करेंगे जिसको उन्होंने स्वप्न में भी नहीं देखा हो।²³

6. डॉ० फैलिव्स वैली- जैनत्व को पश्चिम द्वारा नकारा गया है कि केवल मुट्टीभर यूरोपीय विद्वानों ने जैनत्व के स्रोतों के अध्ययन के लिए समय समर्पित किया है और अब भी बहुत ही कम अमेरिकी जैनत्व के मूलभूत तथ्यों को जानते हैं। बुद्ध जो कि संभवतः स्वयं भी एक जैन थे ने अपना स्वयं का मध्य मार्ग प्रारम्भ करने का महान् निर्णय लिया। जर्मनी के कुछ महान् दार्शनिकों के अनुसार जैन योग का आर्यपूर्व भारत में उद्भव हुआ। यह निश्चित प्रतीत होता है कि जैनत्व भारतीय विचारों का आधार है। जो ऊँचाई जैनत्व ने पातञ्जली से भी पूर्व प्राप्त की। वहाँ तक ईसाई या सूफी जैसे उपभारतीय योग विचार एवं व्यवहार कभी नहीं पहुँच पाये। इस बात के पर्याप्त साक्ष्य है कि जैनत्व स्वानुशासन के रूप में योग के पवित्रतम एवं कठोरतम रूप का प्रतिनिधित्व करता है।²⁴

7. प्रो० डॉ० जी तुसर्ड, (युनिवर्सिटी ऑफ रोम)- मैं समझता हूँ कि कोई भी विद्वान् इसे नहीं नकार सकता कि जैन मत भारतीय मस्तिष्क के महानतम एवं महत्त्वपूर्ण रचनाओं में से एक है। जो कि सदियों से अपनी विलक्षणताओं के साथ जीवित है। भारतीय सभ्यता साहित्य या दर्शन की ऐसी कोई शाखा नहीं है जहाँ पर जैनमत का गहन अध्ययन प्रकाश नहीं डालता हो। भारतीय इतिहास में रूचि लेने वाले किसी भी महान् विद्वान के लिए यह असंभव है कि वह जैनमत की उपेक्षा कर दे जो कि व्यापक रूप से ध्यान देने योग्य है एवं परिश्रम पूर्ण योग्य है। प्रत्येक मान्यता के साहित्य पर विद्वानों द्वारा वाद-विवाद किया जा सकता है परन्तु महावीर के सिद्धान्तों के मूल तत्त्व किसी भी आलोचना से सदैव अनछुए ही रहेंगे।²⁵

8. प्रो० अल्बर्ट आइंस्टीन - हिंसक ताकतों पर विजय प्राप्त करने के लिए हिंसक बलों का प्रयोग करना सफलता तक नहीं पहुँचाता वरन् हिंसक शक्तियों का प्रयोग करने वालों का असहयोग करके ही हिंसक ताकतों पर विजय प्राप्त की जा सकती है।²⁶

9. सर विन्सेन्ट ए० स्मिथ- जैनियों द्वारा परिश्रम पूर्ण संरक्षित पुस्तकालयों में अमूल्य सामग्री है और उनकी पुस्तकें ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष रूप से समृद्ध हैं।²⁷

10. प्रो० टेन युनसेन (चाइना)- सर्वप्रथम अहिंसा का पाठ अत्यंत गहराई में एवं सुव्यवस्थित तरीके से जैन तीर्थकरों, विशेष रूप से 24 वें तीर्थकर महावीर स्वामी द्वारा समझाया गया। इसके बाद पुनः भगवान् बुद्ध द्वारा एवं अन्त में यह महात्मा गांधी के विचारों, शब्दों एवं कार्यों में परिलक्षित हुआ।²⁸

11. डॉ० राईस डेविड एम० ए०, डी० लिट्- यह बात अब निश्चित है कि जैनधर्म बौद्ध धर्म से निःसंदेह बहुत पुराना है और बुद्ध के समकालीन महावीर द्वारा उसका पुनः संजीवन हुआ है और यह बात भी भली प्रकार निश्चित है जैन मत के मन्तव्य बहुत ही जरूरी और बौद्ध मत के मन्तव्यों से बिल्कुल विरुद्ध है।²⁹

12. प्रो० डॉ० मैक्समूलर -जैनधर्म अनन्तानन्त गुणों का भण्डार है। जिसमें बहुत ही उच्च कोटि का तत्त्व फिलास्फी भरा हुआ है। ऐतिहासिक, धार्मिक और साहित्यिक तथा भारत के प्राचीन कथन जानने की इच्छा रखने वाले विद्वानों के लिए जैनधर्म का स्वाध्याय बहुत लाभदायक है।³⁰

13. रेवरेन्ज जे० स्टीवेन्सन महोदय- भारतवर्ष का अधःपतन जैनधर्म के अहिंसा सिद्धान्त के कारण ही नहीं हुआ था, बल्कि जब तक भारतवर्ष में जैनधर्म की प्रधानता रहीं थी, तब तक उसका इतिहास स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य था।³¹

14. डॉ० एन० ए० बी० सेंट- यूरोपियन ऐतिहासिक विद्वानों ने जैनधर्म का भली प्रकार स्वाध्याय नहीं किया इसलिए उन्होंने महावीर स्वामी को जैनधर्म का स्थापक कहा है। हालांकि यह बात स्पष्ट रूप से

सिद्ध हो चुकी है कि वे अन्तिम चौबीसवें तीर्थंकर थे। इनसे पहले अन्य तेईस तीर्थंकर हुए जिन्होंने अपने अपने समय में जैन धर्म का प्रचार किया।

15. डॉ० अनेस्ट लायमैन जर्मनी- भगवान् महावीर अलौकिक महापुरुष थे। वे तपस्वियों में आदर्श, विचारकों में महान् आत्म-विकास में अग्रसर दर्शनकार और उससमय की प्रचलित सभी विद्याओं में पारंगत थे। छः द्रव्य धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल, आकाश, पुद्गल, जीव और उनका स्वरूप तत्त्व विद्या, विश्वविद्या, दृश्य और अदृश्य जीवों का स्वरूप जीवन विद्या बताया। चैतन्य रूप आत्मा का उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकास स्वरूप मानस शास्त्र आदि विद्याओं का उन्होंने अपनी तपस्या के बल से रचनात्मक रूप देकर जनता के सन्मुख उपस्थित किया। इस प्रकार वीर केवल साधु अथवा तपस्वी ही नहीं थे, बल्कि वे प्रकृति के अभ्यासक थे और उन्होंने विद्वतापूर्ण निर्णय दिया।³²

16. डॉ० जे० जी० वुल्हर, सी० आई०, एल० एल० डी० - जैनधर्म के प्राचीन स्मारकों से भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास की बहुत जरूरी और उत्तम सामग्री प्राप्त होती है। जैनधर्म प्राचीन सामग्री का भरपूर खजाना है।³³

17. डॉ० चारो लोटा क्रौज संस्कृत युनिवर्सिटी- जैनधर्म के सिद्धान्तों पर मुझे दृढ़ विश्वास है कि यदि सब जगह उनका पालन किया जाए तो वह इस पृथ्वी को स्वर्ग बना देंगे। जहाँ तहाँ शान्ति और आनन्द ही आनन्द होगा।³⁴

18. माननीय एम० दत्त, भारतीय राजदूत, जर्मनी- मैं यह देखकर अत्यंत प्रसन्न हूँ कि जैनधर्म के उद्गम मूलस्थान से इतनी दूर स्थित इस महान् देश जर्मनी में कई विद्वान् एवं अन्य लोग जैनधर्म के दर्शन एवं सिद्धान्तों में रूचि ले रहे हैं। यद्यपि जैनियों की संख्या केवल

12.5 मिलीयन ही है, इसके बावजूद भी इस महान् धर्म की शिक्षाएँ पहले से कहीं अधिक याद रखी जाने योग्य एवं अनुशरण करने योग्य हैं।³⁵

19. माननीय डॉ० एम० बी० नियोगी, (मुख्य न्यायाधीश, नागपुर, उच्चन्यायालय)—जैनमत अत्यंत प्राचीन है, इसके बावजूद इसे हिन्दु या बौद्ध की एक शाखा होने की भ्रान्ति नवीनतम ऐतिहासिक शोधकर्ताओं द्वारा तोड़ दी गई है। जैन विचारकों का रत्नत्रय स्वतंत्रता न्याय की ओर सच्चा पथ है। अनेकांतवाद, स्याद्वाद विश्व के विचारों में अद्वितीय स्थान रखता है। जैन शिक्षाओं का विश्लेषण करने पर ये उतनी ही आधुनिक पाई जाती हैं या लगती हैं जितनी ये प्राचीन है। जैन विचारक इतिहास में अहिंसा के सिद्धान्तों को प्रतिपादित करने वाले सर्वप्रथम थे।³⁶

20. माननीय श्री मिश्रीलाल गंगवाल, (मध्य भारत के मुख्यमंत्री)—अहिंसा का सिद्धान्त ही घायल मानवता का एक मात्र उपचार है। अहिंसा के सिद्धान्तों को दूर दूर तक फैलाना जैन समुदाय का कर्तव्य है। माननीया श्रीमती रुजवेल्ट ने भारत का भ्रमण किया था हमारे देश में अहिंसा की सांस्कृतिक नैतिकता ने उन्हें सर्वाधिक प्रभावित किया। इसी अहिंसा के बल पर भारतीयों ने स्वतंत्रता का युद्ध सफलता से लड़ा।³⁷

21. माननीय श्री सीताराम जाजू, (मध्य भारत के कानूनमंत्री)—मैं व्याकुल हूँ उस दिन को देखने के लिए जब भगवान् महावीर द्वारा सिखाये गये प्रेम व अहिंसा के सिद्धान्त पूरे विश्व के लोगों द्वारा व्यवहार में लाये जाएंगे। जिससे कि विश्व के हर कोने में शांति एवं संतोष का संचार होगा। भगवान् महावीर एक अत्यन्त बहादुर व्यक्ति थे जिन्होंने अपनी इच्छाओं एवं भावनाओं पर विजय प्राप्त की थी।³⁸

22. माननीय डॉ० सहीद मोहम्मद, विकास मंत्री बिहार—आज विश्व हिंसा से त्रस्त है। अहिंसा, प्रेम और सामञ्जस्य पर आधारित एक

नई जीवन पद्धति की जरूरत समझी जा रही है। इसलिए भगवान् महावीर का अहिंसा एवं विश्व बंधुत्व का संदेश विश्व को पुनः सिखाये जाने की आवश्यकता है।³⁹

23. डॉ० राजेन्द्र प्रसाद जी, प्रथम राष्ट्रपति- मैं अपने को धन्य मानता हूँ कि मुझे महावीर स्वामी के प्रदेश में रहने का सौभाग्य मिला है। अहिंसा जैनों की विशेष सम्पत्ति है। जगत् के अन्य किसी भी धर्म में अहिंसा सिद्धान्त का प्रतिपादन इतनी सफलता से नहीं मिलता।⁴⁰

24. डॉ० श्री राधाकृष्णन् जी, राष्ट्रपति- यदि मानवता को विनाश से बचाना है और कल्याण के मार्ग पर चलना है तो भगवान् महावीर के संदेश को और उनके बताए हुए मार्ग को ग्रहण किए बिना और कोई रास्ता नहीं।⁴¹

25. श्री पंडित जवाहर लाल नेहरू, प्रथम प्रधानमंत्री- आशा है कि भगवान् महावीर द्वारा प्रणीत सेवा और त्याग भावना का प्रचार करने से सफलता होगी।⁴²

26. सरदार श्री बल्लभभाई पटेल- जैनधर्म पीले कपड़े पहनने से नहीं आता। जो इन्द्रियों को जीत सकता है, वही सच्चा जैन हो सकता है। अहिंसा वीर पुरुषों का धर्म है, कायरों का नहीं। जैनों को अभिमान होना चाहिए कि कांग्रेस उनके मुख्य सिद्धान्त का अमल समस्त भारतवासियों से करा रही है। जैनों को निर्भय होकर त्याग का अभ्यास करना चाहिए।⁴³

27. श्री जी० बी० मावलंकर, स्पीकर भारत सरकार- भगवान् महावीर एक महान् आत्मा है, जो केवल जैनियों के लिए ही नहीं बल्कि समस्त संसार के लिए पूज्य हैं। आजकल के भयानक समय में भगवान् महावीर की शिक्षाओं की बड़ी जरूरत है। हमारा कर्तव्य है कि हम उनकी याद को ताजा रखने के लिए उनके बताये हुए मार्ग पर चले।⁴⁴

28. श्री राज गोपालाचार्य- भगवान् महावीर का संदेश किसी

खास कौम या फिरके के लिए नहीं है बल्कि समस्त संसार के लिए है। अगर जनता महावीर स्वामी के उपदेश के अनुसार चले तो वह अपने जीवन को आदर्श बना ले। संसार को सच्चा सुख और शान्ति की प्राप्ति उसी सूरत में हो सकती है जबकि हम उनके बतलाये हुए मार्ग पर चलें।⁴⁵

29. श्री प्रकाश जी, मंत्री भारत सरकार- जैनधर्म और संस्कृति प्राचीन है। भारतवासी, जैनधर्म के नेताओं तीर्थकरों को, मुनासिब धन्यवाद नहीं दे सकते। जैनधर्म का हमारे किसी न किसी विभाग में राष्ट्रीय जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव है। जैनधर्म के साहित्यिक ग्रन्थों की स्वच्छ और सुन्दर भाषा है। साहित्य के साथ-साथ विशेष रूप से जैनधर्म ने आकर्षित किया है। जो मानव को अपनी ओर खींचता है। जैनधर्म कला के नमूने देखकर आश्चर्य होता है। जैनधर्म ने सिद्ध कर दिया है कि लोक और परलोक के सुख की प्राप्ति अहिंसा व्रत से हो सकती है।⁴⁶

30. राजर्षि श्री पुरुषोत्तम जी टण्डन- भगवान् महावीर एक महान् तपस्वी थे। जिन्होंने सदा सत्य और अहिंसा का प्रचार किया। इनकी जयंती का उद्देश्य मैं यह समझता हूँ कि आदर्श पर चलने और उसे मजबूत बनाने का यत्न किया जावे।⁴⁷

निष्कर्ष:

जैनधर्म व जैनधर्म के सिद्धान्तों से पूरा विश्व उपकृत्य है। प्रत्येक विद्वान् यदि निष्पक्ष बुद्धि से विचार करे तो उसे ज्ञात होगा कि जैनधर्म अनादिकाल से चला आ रहा है तथा तीर्थकरों ने विश्व कल्याण के लिए क्या योगदान दिया है तीर्थकरों ने जो उपदेश दिया था वह आज के विज्ञान से सत्यापित हो रहा है अर्थात् सत्य को वैज्ञानिक सत्य सिद्ध कर रहे हैं।

संदर्भ

1. रत्नकरण्डक श्रावकाचार, श्लोक 2
2. भागवत् अध्याय-5-2-6
3. आदिनाथ पुराण
4. जैनस्तूप एंड एण्टीक्वीटीज ऑफ मथुरा पृ. 24, 25
5. जैनधर्म, पृष्ठ-22
6. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, प्रकरण इतिहास, भाग-1, पृष्ठ-316
7. जैन धर्म, पृष्ठ-22
8. अशोक के धर्मलेख, पृष्ठ-327
9. जयधवला, प्रथम खण्ड की प्रस्तावना पृ०- 74
10. स्टडीज इन साउथ इंडियन जैनिज्म, पृ०-105,106
11. गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा-191
12. वही, गाथा-186
13. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश-2, पृ०- 51
14. वही, पृ०- 58
15. the ghost in the atom
16. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-6, सूत्र- 11,12, पृष्ठ -252, 254,
17. Deepak chopra-perfect health harmory Book
18. जैन आगमों में वनस्पति विज्ञान, पृष्ठ-34,
19. श्रमण भगवान महावीर,भाग-1, पृ०-55-80
20. भगवान् महावीर का आदर्श जीवन, पृ०-17
21. विश्व समस्या और जैनत्व, प्रस्तावना, पृ०-1
22. वीर पत्रिका, पृ०-2, दिनांक- 13-5-1926
23. मैं जैन क्यों बना विश्व जैन अभियान

24. वॉइस ऑफ अहिंसा भाग-11 पृ०-98-103
25. भगवान् महावीर और उनका तत्त्व दर्शन, पृष्ठ-861
26. महावीर कममेमोरेशन, भाग-1, पृ०-3
27. जैन एन्साइक्लोपीडिया, भाग-1, पृ०-27
28. महावीर कममेमोरेशन, भाग-1, पृ०-3
29. इंसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका, भाग- 29
30. इंसाइक्लोपिडिया ब्रिटेनिका, भाग- 29
31. जैन धर्म पर लोक मान्य तिलक एवं प्रसिद्ध विद्वानों का अभिमत, पृ० 27
32. भगवान महावीर का आदर्श जीवन, पृ०-13,14
33. भारत वर्ष के प्राचीन जमाने के हालात, पृ० -307
34. जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन अन्तिम पृष्ठ
35. वॉइस ऑफ अहिंसा, अलीगंज, भाग-11, पृ०-250
36. जैनशासन भारतीय ज्ञानपीठ, पृ०-7-18
37. वॉइस ऑफ अहिंसा, भाग-11, पृ०-79
38. वॉइस ऑफ अहिंसा, भाग-11, पृ०-78
39. महावीर संदेश, जयपुर, पृ०-20, दिनांक-25-5-1947
40. अनेकान्त, वर्ष-6, पृ०-39
41. शांतिदूत महावीर, पृ०-30
42. वीर देहली, पृ०-4, दिनांक-15-1-1951
43. अनेकान्त, वर्ष-6, पृ०-39
44. महावीर स्मृति ग्रंथ, आगरा, भाग-1, पृ०-2
45. जैन संसार, देहली, मार्च 1947, पृ०-5
46. वीर देहली, पृ०-5, दिनांक-15-1-1951
47. वर्द्धमान देहली, अप्रैल, 1953, पृ०-8

अध्याय द्वितीय जैनधर्म का आचार : एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण

भूमिका

लोक में मनुष्य के जीवन-मरण के साथ-साथ अन्य जीवों के जीवन-मरण की सत्ता भी स्वीकार की गई है, चाहे वह एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव ही क्यों न हो। जैनदर्शन तथा विज्ञान इन दोनों ने जीवों की सत्ता को पृथ्वी पर स्वीकार किया है। जैनदर्शन में एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय असंज्ञी पर्यन्त के जीवों को तिर्यच की संज्ञा दी गई है। वहीं विज्ञान इन जीवों को दो भागों में विभाजित कर पशुविज्ञान एवं वनस्पति विज्ञान के अन्तर्गत स्वीकार करता है, लेकिन विज्ञान की अपेक्षा से कुछ ऐसे जीव हैं जिन्हें पशु तथा वनस्पति विज्ञान दोनों में ग्रहण नहीं किया गया, उन्हें सूक्ष्म जीव कहते हैं। जैनदर्शन भी सूक्ष्म जीवों को एकेन्द्रिय जीव मानकर उनके अस्तित्व को स्वीकारता है। विज्ञान के द्वारा बताये गये सूक्ष्म जीव क्या वास्तव में जैनदर्शन में माने गये सूक्ष्म जीव हैं अथवा बादर जीवों की श्रेणी में आते हैं।

विज्ञानापेक्षा सूक्ष्मजीव

सूक्ष्मजीव सजीवों का वह वर्ग है जो आकार में बहुत छोटे होते हैं तथा जिन्हें हम अपनी नग्न आँखों से नहीं देख सकते। ये प्रायः सभी स्थानों में पाये जाते हैं। मिट्टी में, पानी में तथा हमारे चारों ओर स्थित वायु में, ये सूक्ष्मजीव अनेक आकार में पाये जाते हैं। इन सूक्ष्म जीवों के अध्ययन के लिए विशिष्ट सूक्ष्मदर्शी यंत्र की आवश्यकता पड़ती है, बड़े

आकार के सूक्ष्म जीवों को साधारण सूक्ष्मदर्शी द्वारा देखा जा सकता है। लेकिन कुछ तो इतने सूक्ष्म होते हैं कि जिन्हें इलैक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप द्वारा ही देखा जा सकता है।

सूक्ष्मजीव प्रायः सभी प्रकार के परिवेश जैसे-गर्म मौसम, अति शीतल पानी, अधिक लवण युक्त पानी, गंधक युक्त एवं अन्य कार्बनिक पदार्थों, रेगिस्तान एवं दलदली प्रदेशों आदि में जीवित रह सकते हैं। कुछ सूक्ष्मजीव तो अधिक गर्म एवं शुष्क जैसे विपरीत वातावरण में भी जीवित रह सकते हैं कुछ बिना ऑक्सीजन के भी जीवित रह सकते हैं।¹

सूक्ष्मजीव कई प्रकार से हमारी मदद करते हैं परन्तु उनमें से कुछ बीमारी पैदा करते हैं। सर्दी, जुकाम, मलेरिया, त्वचा के रोग, इन्फ्लूएन्जा आदि अनेक बीमारियाँ सूक्ष्म जीवों द्वारा ही फैलती हैं।

जैनदर्शनापेक्षा सूक्ष्मजीव

जैनदर्शन में सूक्ष्मजीवों के विषय में कथन है कि जो जीव न किसी से बाधा को प्राप्त होते हैं, न किसी को बाधा पहुँचाते हैं। जो जीव किसी भी प्रकार से नेत्रेन्द्रिय गम्य नहीं हैं, वे सूक्ष्म जीव हैं तथा जो बाधा को प्राप्त हैं और बाधा पहुँचाते हैं, सूक्ष्मदर्शी से नेत्रेन्द्रिय गम्य हैं, उन्हें बादर जीव कहते हैं। परन्तु बादर होने पर भी ये इतने सूक्ष्म जीव होते हैं कि सामान्य आँखों से दिखाई नहीं देते।² इसीकारण जैनदर्शन में वर्णित बादर जीवों को विज्ञान सूक्ष्म जीव कहता है। बादर जीव भी अपेक्षाकृत सूक्ष्म एवं स्थूल होते हैं।

विज्ञान में कथित सूक्ष्म जीवों को वैज्ञानिक माइक्रोस्कोप से देख सकते हैं परन्तु जैनदर्शन में वर्णित सूक्ष्मजीवों को कदापि नहीं देखा जा सकता। माइक्रोस्कोप के द्वारा देखे गये सूक्ष्म जीव जैनदर्शन की अपेक्षा से बादर जीव माने गये हैं। आचार्य नेमिचंद्र स्वामी ने गोम्मटसार में स्थावरों के सूक्ष्म व बादर दो भेद किये हैं। इसके अलावा 2-5 इन्द्रिय

तक के जीवों को बादर जीवों की श्रेणी में रखा गया है।³ पंच स्थावरों में सूक्ष्म जीवों को देखना असंभव है तथा बादर जीवों में पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, वनस्पति जीव आते हैं। जिनका हम स्पर्शकर अनुभव करते हैं। विकलत्रय जीव भी बादर हैं, जिन्हें देखा जा सकता है, इनमें भी कुछ ऐसे सूक्ष्म बादर जीव होते हैं। जिन्हें नग्न आँखों से न देखकर सूक्ष्मदर्शी से देखा जाता है, जिन्हें विज्ञान सूक्ष्मजीवों की संज्ञा दे रहा है। जैनदर्शन के अनुसार इन विकलत्रय बादर जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म माना गया है। विज्ञान कहता है कि सूक्ष्मजीव गर्म, शुष्क, अनुकूल तथा प्रतिकूल वातावरण में रह सकते हैं। इसी बात को जैनदर्शन में जन्म के योग्य नौ योनिस्थान बताये हैं जिनमें सम्मूर्च्छन जीवों के योग्य सात योनिस्थान निर्धारित हैं जैसे- सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, विवृत। इन योनियों में विभिन्न तरह का वातावरण रहता है जिसमें विज्ञान द्वारा कथित वातावरण गर्म मौसम, अतिशीतल पानी, अधिक लवणयुक्त पानी, गंधक युक्त एवं अन्य कार्बनिक पदार्थ युक्त वातावरण, रेगिस्तान एवं दलदली प्रदेश, ऑक्सीजन रहित प्रदेश इत्यादि वातावरण इन योनिस्थानों में समाहित हो जाते हैं।⁴ जिसप्रकार विज्ञान में वर्णित कुछ सूक्ष्म जीव सभी प्रकार के वातावरण में रह सकते हैं उसीप्रकार जैनदर्शन में वर्णित कुछ बादर सूक्ष्मजीव भी सभी प्रकार के वातावरण में रह सकते हैं, जिन्हें बादर जीव कहते हैं। जैनदर्शन में वर्णित सूक्ष्मजीव हमारी न मदद कर सकते न बीमारी फैला सकते, क्योंकि सूक्ष्मजीव न बाधा पहुँचाते, न बाधा को प्राप्त करते हैं, तो वह कैसे मदद करेंगे और बीमारियाँ फैलायेंगे अतः यह सूक्ष्म जीव न होकर बादर सूक्ष्म जीव हैं।

सूक्ष्मजीव के भेद विज्ञानापेक्षा

विज्ञान ने सूक्ष्म जीवों के पाँच प्रकार कहे हैं- जिनमें प्रोटोजोआ तथा युग्लीना, फंजाई, एलो, बैक्टेरिया और वायरस तथा सब वायरस आते हैं।⁵ इनकी स्वयं की कोई कोशिका नहीं होती। ये अन्य जीवों की

कोशिकाओं में फलीभूत होते हैं। सब वायरस इनसे भी अधिक सूक्ष्म होते हैं। इनमें बैक्टेरिया जीव हमारे जीवन में क्या प्रभाव डालते हैं ? क्या ये सूक्ष्मजीव हैं या बादर हैं?

बैक्टेरिया क्या है?

बैक्टेरिया को वैज्ञानिक एक कोशीय सूक्ष्मजीव मानते हैं। ये बैक्टेरिया अलग-अलग शकल तथा साइज में पाये जाते हैं। इनमें से कुछ स्वतंत्र कोशिका के रूप में, कुछ कोशिकाओं के समूह के रूप में तथा कुछ कोशिकाओं की लड़ी के रूप में रहते हैं। इन्हें सूक्ष्मदर्शी द्वारा ही देखा जा सकता है। कुछ वैज्ञानिक बैक्टेरिया को वनस्पति की श्रेणी में रखते हैं तथा कुछ वनस्पति तथा पशु की श्रेणी में रखते हैं।

बैक्टेरिया हजारों प्रकार के होते हैं। उनमें से कुछ मनुष्यों के लिए हानिकारक होते हैं। काफी संख्या में बैक्टेरिया मनुष्य के शरीर के अन्दर भी पाये जाते हैं लेकिन वे नुकसान नहीं पहुँचाते हैं। बैक्टेरिया की कुछ प्रजातियाँ बीमारी फैलाती हैं तथा कुछ प्रजातियाँ लाभदायक भी होती हैं।

यह निर्णय तो जैनदर्शन ने पहले ही कर दिया है कि विज्ञान के सूक्ष्मजीव बादर की कोटि में आते हैं, इसलिए बैक्टेरिया भी सूक्ष्मजीव होने से बादर हैं। जैनाचार्य कहते हैं कि मनुष्य और तिर्यञ्च के औदारिक शरीर में अनन्त निगोदियाँ जीवों के साथ-साथ बादर जीवों का निवास भी होता है, जो लाभदायक तथा हानिकारक दोनों प्रकार के होते हैं। जब शरीर में हानिकारक बैक्टेरिया की मात्रा अधिक हो जाती है या लाभदायक बैक्टेरिया जब हानिकारक बैक्टेरिया से शरीर की रक्षा करने में विफल हो जाते हैं तो शरीर अस्वस्थ हो जाता है। आचार्यों ने शरीर की अशुचिता के संबंध में कहा है कि इस शरीर में जितने रोम होते हैं, उतने रोग होते हैं।^१ यह शरीर जीवाणुओं से भरा अपवित्र है, अर्थात् इस शरीर में भी जीवाणु रूप बैक्टेरिया पाये जाते हैं, जो हानि-लाभ दोनों प्रदान करते हैं तथा सूक्ष्मजीवों में रक्षा तथा हानि का स्वभाव नहीं होता इसलिए ये जीव बादर जीव है।

बैक्टेरिया जीवों का स्थान

बैक्टेरिया भी सूक्ष्मजीवों का भेद है, इसी कारण सूक्ष्मजीवों की तरह बैक्टेरिया भी सभी प्रकार के वातावरण में तथा सभी स्थानों पर रह सकते हैं। कुछ बैक्टेरिया तो उन विषम परिस्थितियों में भी जीवित रह सकते हैं, जिनमें मनुष्य भी जीवित न रह सके। कुछ बैक्टेरिया हमारे पाचनतंत्र एवं श्वसनतंत्र में भी रहते हैं। कुछ बैक्टेरिया ऑक्सीजन के अभाव में, कुछ ऑक्सीजन के सद्भाव में जीवित रहते हैं तथा कुछ बैक्टेरिया ऑक्सीजन के सद्भाव में नष्ट हो जाते हैं तथा कुछ बैक्टेरिया मनुष्यों की तथा पशुओं की त्वचा के नीचे भी पाये जाते हैं। इनका स्थान परिवर्तन हवा व पानी के कारण भी होता है अधिकतर बैक्टेरिया अयोनिज प्रजनन करते हैं।⁷

जैनदर्शन में बैक्टेरिया (बादर) का जन्म अयोनिज अर्थात् सम्मूर्च्छन जन्म कहा गया है तथा सम्मूर्च्छन जीवों का उत्पाद स्थान सर्वलोक कहा गया है। इसीकारण बैक्टेरिया हवा, मिट्टी, पानी इत्यादि के उत्पाद स्थान में तथा ऑक्सीजन की उपस्थिति और अनुस्थिति में भी पाये जाते हैं। विज्ञान बैक्टेरिया का निवास जीवों के श्वसनतंत्र एवं पाचनतंत्र में मानता है। इसी बात को जैनदर्शन कहता है कि बादर बैक्टेरिया का जन्म सम्मूर्च्छन होने के कारण हमारे शरीर के श्वसनतंत्र, पाचनतंत्र तथा अन्य तंत्रों में भी उत्पन्न होते हैं तथा कालावधि समाप्त होने पर मरण को प्राप्त हो जाते हैं तथा हवा, ऑक्सीजन के ग्रहण करने पर वे जीव हमारे शरीर के अन्दर भी प्रवेश कर जाते हैं, जो हानिकारक होने पर हैजा, मलेरिया, डायरिया, स्वाइनफ्लू जैसी बीमारियाँ पैदा करते हैं। विज्ञान में बैक्टेरिया का स्थान मनुष्यों तथा पशुओं की त्वचा के नीचे भी बताया है। इस बात को आचार्य नेमिचंद्रस्वामी ने कहा है कि मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों में स्त्रियों के योनिस्थान कांख, स्तन, मल, मूत्र में सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति होती है⁸ परन्तु वे पंचेन्द्रिय होने के बावजूद भी इतने सूक्ष्म होते हैं कि हमारे

नग्न चक्षुओं से दिखाई नहीं देते इन्हें ही वैज्ञानिक मनुष्य एवं पशुओं की त्वचा में बैक्टेरिया मानते हैं।

दही, छाछ में बैक्टेरिया हैं अथवा नहीं

यह सत्य है कि जैनधर्म में आचार्यों ने मर्यादित तथा शुद्ध विधि से बनाये दही एवं छाछ के ग्रहण की अनुमति दी है। समाधिस्थ साधु को जीवन के अन्त समय में भोजन का त्याग कराते समय छाछ का आहार दिया जाता है, परन्तु दही एवं छाछ भक्ष्य है या अभक्ष्य इसका निर्णय दही और छाछ बनाने की विधि पर निर्भर है।

सामान्य एवं आधुनिक विधि

सामान्य जीवन में धर्म से अनभिज्ञ व्यक्ति वैज्ञानिकों की पद्धति जामन से दही एवं छाछ बनाता है, जिसमें वैज्ञानिक बैक्टेरिया मानते हैं। जैनदर्शन भी जामन से बने दही में बादर (बैक्टेरिया) की उत्पत्ति मानता है। जामन से बने दही की प्रक्रिया में हल्के गर्म दूध में पुराना दही का अंश डाल देने से तीन, चार घंटे में नया दही तैयार हो जाता है। उसमें भी पुराने दही के बैक्टेरिया आ जाते हैं और निमित्त पाकर अपनी उत्पत्ति तेज कर देते हैं वैज्ञानिक कहते हैं कि बैक्टेरिया को योग्य वातावरण मिले तो दस घंटे में एक बैक्टेरिया दस लाख हो जाते हैं।^१ दही में भी इसी गति से बैक्टेरिया की वृद्धि होती है जिससे दही खट्टा हो जाता है। जितना अधिक खट्टा दही होता है वह उतना अधिक बैक्टेरिया जीवों से सहित होता है। विज्ञान कहता है कि इसप्रकार से बने दही में अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीव होते हैं जिनमें लैक्टोबेसीलस तथा स्टैफिलोकोकस नामक बैक्टेरिया प्रमुख हैं। दही में कुछ प्रकार के यीस्ट भी पाये जाते हैं। एक मिलीलीटर दही में लगभग 20 करोड़ बैक्टेरिया पाये जाते हैं। लैक्टोबेसीलस नामक बैक्टेरिया दूध से दही बनाने में अहम भूमिका निभाते हैं। जब इन सूक्ष्म बैक्टेरिया को गुनगुने अर्थात् लगभग 37° ताप के दूध में मिलाया जाता है तो ये बैक्टेरिया बहुत तेजी से बढ़ने लगते हैं। अपनी इस वंश वृद्धि के

दौरान ये दूध के वसा रहित तत्त्व को ग्रहण कर लेते हैं, जिससे गाढ़ा पदार्थ शेष रहता है, जिसे दही कहते हैं। अधिक गर्म दूध में जामन डालने से भी बैक्टेरिया मर जाते हैं, जिससे दही नहीं जमता। इस प्रकार की विधि से बना दही यदि ताजा भी होता है तो भी बैक्टेरिया युक्त होता है। इस कारण से (बादर) बैक्टेरिया से युक्त दही साधुओं को तो त्यागने योग्य कहा ही है, साथ में श्रावक को भी अभक्ष्य की कोटि में गिनाकर त्यागने का निर्देश दिया है।

जैनदर्शनानुसार दही बनाने की विधि

जैनदर्शन में जामन के बिना भी दही बनाया जाता है। यह दही चाँदी के सिक्के, नारियल या बादाम के छिलके (कठोर भाग), मारबल की पट्टी इत्यादि वस्तुओं से दही बनाया जाता है। इसमें दूध पकाने के बाद हल्के गर्म दूध में इनमें से किसी एक वस्तु को धोकर एवं सुखाकर डाल दिया जाता है। जिससे 4 से 5 घंटे में दही बन जाता है। इस तरह से जमे दही में बैक्टेरिया नहीं होते हैं। इसमें उस वस्तु के संयोग से दूध पदार्थ में (पुद्गल में) विकृति उत्पन्न होती है। जिसकारण दूध विकृत होकर दही रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार से जमे दही की मर्यादा दूध के बराबर 24 घंटे कही गयी है। क्योंकि प्रासुक दूध की मर्यादा 24 घंटे है। उसके बाद उसमें त्रस जीव की उत्पत्ति होने लगती है। दही भी दूध से बना होता है जिसकारण दही में भी 24 घंटे के बाद त्रस जीव उत्पन्न होने लगते हैं। इसीकारण जैन साधु तथा श्रावक 8 पहर का अर्थात् 24 घंटे का दही व 12 घंटे की छाछ लेते हैं।¹⁰

जो लोग ये मानते हैं कि बिना जामन के जमे दही में भी बैक्टेरिया होते हैं। वह स्थावर जीव हैं, इस कारण साधु भी उन्हें ग्रहण करते हैं, यह मान्यता मिथ्या है। प्रथम तो साधु त्रस तथा स्थावर दोनों प्रकार की हिंसा के त्यागी होते हैं, इसलिए बैक्टेरिया को एकेन्द्रिय मानोगें तो भी साधु के लिए दही अभक्ष्य है। द्वितीय जामन के बिना बने दही में ऊपर से किसी

बैक्टेरिया का प्रवेश नहीं कराया गया जिस बर्तन में दही बनाया गया वह बर्तन भी छने पानी से धोकर सुखाया गया उसके पश्चात् दही बनाया गया। जामन से बने दही और चाँदी के सिक्के से बने दही का स्वाद अलग अलग होता है। जब जैन विद्वानों ने आचार्य विद्यासागर जी महाराज के समक्ष जामन से बने दही का तथा सिक्के से बने दही का सूक्ष्मदर्शी से अवलोकन किया तो पाया गया कि दोनों प्रकार के दही में बहुत अन्तर है। जामन वाले दही में स्पष्ट बैक्टेरिया दिखाई दे रहे थे जबकि बिना जामन के दही में बुलबुले दिखाई दे रहे थे। बुलबुलों की पुष्टि के लिए हल्के गर्म दूध में नीबू डाला गया तो वह भी थक्के रूप में परिवर्तित हो गया फिर सिक्के से जमे दही के बुलबुले तथा नीबू से थक्के रूप में परिवर्तित दूध को सूक्ष्मदर्शी से देखा गया तो निष्कर्ष निकला कि इन दोनों के बुलबुले समान हैं तथा जामन के दही के बैक्टेरिया अलग प्रकार के हैं। इन दोनों में पुद्गल की रासायनिक अभिक्रिया हुई थी जिसकारण दूध दही में परिवर्तित हो गया। इसकारण सिक्के से जमाया गया दही पूर्णतः शुद्ध तथा साधु और श्रावक को मर्यादा के अन्दर खाने की अनुमति जैनदर्शन देता है और जामन वाले दही को पूर्णतः अभक्ष्य कहता है, जो साधु और श्रावक दोनों के लिए निषेध है।

जलगालन विधि एवं बैक्टेरिया

जैनधर्म में छने पानी पर विशेष बल दिया गया है, जैनधर्म में पानी छानने की एक विशेष विधि है। जिसमें एक मोटा कपड़ा लिया जाता है। जिससे सूर्य की रोशनी आर पार नहीं जा सके। कपड़े के नाप के लिए 36 अंगुल लम्बे और 24 अंगुल चौड़े वस्त्र को दोहरा करके पानी छानने का निर्देश है।¹¹ ऐसे कपड़े से पानी छानने से अनछने पानी में जो त्रस जीव होते हैं, वे छन जाते हैं और पानी 48 मिनट तक के लिए त्रस जीवों की उत्पत्ति स्थान से रहित हो जाती है। परन्तु छने हुए पानी में स्थावर सूक्ष्म जीव पाये जाते हैं। जो कपड़े से नहीं छन पाते क्योंकि वे

बाधा रहित होते हैं। पानी को इन सूक्ष्म जीवों से रहित करने के लिए प्रासुक किया जाता है। जिससे वे सूक्ष्म एवं त्रस जीव दोनों से रहित हो जाता है। इसमें शीतल स्वभाव आने तक दोनों प्रकार के जीवों की उत्पत्ति स्थान नहीं बनते। इसप्रकार के जल को ग्रहण करने के लिए साधु को निर्देश दिया है। साधु त्रस, स्थावर दोनों प्रकार के जीवों की हिंसा के त्यागी होते हैं। इसलिए वह गर्म पानी को ही ग्रहण करते हैं तथा डॉक्टर और वैज्ञानिक भी लोगों को स्वस्थता के लिए गर्म (प्रासुक) जल पीने की सलाह देते हैं। इससे जीवों की हिंसा से भी बचा जा सकता है तथा स्वास्थ्य भी अच्छा रखा जा सकता है। जगदीशचंद्र बसु ने अनछने पानी की एक बूँद में 36450 त्रस जीव बताये हैं।¹² परन्तु विज्ञान इसके अतिरिक्त छने पानी में भी बैक्टेरिया जीव मानता है। जो वैज्ञानिकों की असम्यक् अवधारणा ज्ञात होती है, क्योंकि बैक्टेरिया दूसरों को बाधित करने वाले तथा दूसरों से बाधित होते हैं जबकि प्रकाश की किरण इन बैक्टेरिया से भी सूक्ष्म होती है जो मोटे कपड़े से पार नहीं जा सकती तो बैक्टेरिया उस कपड़े से कैसे पार जा सकते हैं। आज वर्तमान में पानी को गलत तरीके से छानने के कारण गलत मान्यताएँ जन्म ले रही हैं। आज हर व्यक्ति पतली छत्री अथवा पतले कपड़े से पानी को छानकर उसे त्रस जीवों से रहित मान रहा है। जबकि वह पानी पतले कपड़े से छानने के बावजूद भी त्रस जीवों से सहित है और वैज्ञानिक उसी छने हुए पानी में सूक्ष्मदर्शी से त्रस जीवों को देखकर उन्हें बैक्टेरिया मान रहा है। इस प्रकार से छने पानी में पूर्ण रूप से बैक्टेरिया पाये ही जाएंगे जो बादर की कोटि में आते हैं। इस प्रकार छने पानी के पीने से बीमारियाँ तथा रोग बढ़ रहे हैं।

जैनदर्शन में पानी छानने का मूल उद्देश्य जीवों की रक्षा करना तथा जीवहिंसा से बचकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करना है। इसीकारण प्राचीनकाल में और वर्तमान काल में ग्रामों में आज भी पानी को कुएँ, तालाबों से निकालकर उसकी जीवाणी अर्थात् छने हुए त्रस जीवों को

यथास्थान पहुँचाने के लिए कुन्दे की बाल्टी से कुएँ या तालाब में वापस पहुँचाते हैं। इसके साथ ही पानी निकालते समय ध्यान रखा जाता है कि पानी की जीवाणी भी उसी जलाशय में डालनी चाहिए। नहीं तो भिन्न प्रकृति का पानी और जीव होने के कारण जीवाणी वाले जीव मरण को प्राप्त हो जाएंगे।¹³ इसप्रकार छाने पानी के प्रयोग से स्वास्थ्य तथा धर्म दोनों की रक्षा होती है।

विज्ञान कहता है कि बैक्टेरिया हवा, पानी व वातावरण में हमेशा रहते हैं। जिससे श्वास लेते समय वे हमारे शरीर के अन्दर आ जाते हैं इस कारण कुछ लोगों की मान्यता है कि साधु संत भी साँस लेते हैं जिससे उनके अन्दर बैक्टेरिया जाने से हिंसा होती है और साधु त्रस हिंसा नहीं करते इसीकारण बैक्टेरिया सूक्ष्म स्थावर जीव हैं, परन्तु उनकी यह मान्यता भी मिथ्या है क्योंकि साधु सूक्ष्म तथा स्थूल दोनों हिंसा के त्यागी होते हैं। उन्हें हिंसा तो लगती है पर परोक्ष हिंसा लगती है जिसके प्रायश्चित्त के लिए वे दिन में तीन बार प्रतिक्रमण करके क्षमायाचना करते हैं तथा बैक्टेरिया सूक्ष्म जीव हैं तो वह श्वास के द्वारा ही क्यों पूरे शरीर से अन्दर जा सकते हैं क्योंकि वे बाधा रहित हैं और स्वाइनफ्लू तथा श्वास की बीमारी में मुँह और नाक को ही क्यों बंद करते हैं पूरे शरीर को बंद करना चाहिए परन्तु ऐसा होता नहीं वह श्वास से ही अन्दर जाते हैं क्योंकि वह सूक्ष्म नहीं बादर हैं। ऐसे बहुत से बादर हैं जो हमारे शरीर के अन्दर जाकर मरण को प्राप्त भी हो जाते हैं तथा जीवित अवस्था में रहकर मलेरिया, स्वाइनफ्लू इत्यादि बीमारियाँ फैलाते रहते हैं। कुछ बैक्टेरिया विकलत्रय जीव सम्मूर्च्छन जन्म के द्वारा शरीर के अन्दर अग्राशय, पक्वाशय आदि आंतों में उत्पन्न होते रहते हैं जिन्हें सूक्ष्मदर्शी से देखा जा सकता है। ये जीव भी सूक्ष्म न होकर बादर की श्रेणी में आते हैं। साधु संतों का अभिप्राय जीवों को मारने का नहीं है इसीकारण वे हिंसा पाप के भागीदार नहीं हैं।

निष्कर्ष

वर्तमान में विज्ञान तथा जैनदर्शन के सिद्धांतों में तो साम्यता देखी जा रही है परन्तु जैनों की विज्ञान के विषय में तथा वैज्ञानिकों की जैनदर्शन के विषय में अनभिज्ञता होने के कारण कुछ मिथ्या मान्यताएँ प्रकाश में आ जाती हैं। जिससे धर्मानुयायियों को धार्मिक आचरण के साथ स्वास्थ्य लाभ में कठिनाई उत्पन्न होती है। इसी शृंखला में बैक्टेरिया सूक्ष्मजीव है या बादर यह निर्णय लेने का विषय है। जैनदर्शन में सूक्ष्मजीव की परिभाषा अनुसार विज्ञान के सूक्ष्मजीव बादर विकलत्रय की श्रेणी में आते हैं तथा जैनदर्शन का बादर जीव भी इतना सूक्ष्म हो सकता है कि विज्ञान की दृष्टि से सूक्ष्म जीवों में परिगणित हो गया और बादर हिंसा के त्यागी बैक्टेरिया को सूक्ष्मजीव समझकर जामनवाला दही, खमीर उठा डोसा, इडली, ब्रेड जैसे अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करने लगे तथा पानी छानने की विधि में परिवर्तन कर दिया। मात्र एक मान्यता के कारण त्रस जीवों का घात स्थावर जीव समझकर किया जा रहा है। इस प्रकार की मिथ्या मान्यताओं से बचने के लिए विज्ञान तथा जैनदर्शन का गहन अध्ययन अत्यावश्यक है।

रात्रिभोजन निषेध

जीवन में सुख का अनुभव करने के लिए स्वास्थ्य लाभ आवश्यक है। स्वास्थ्य लाभ से ही मानव जीवन तथा अन्य जीवों का जीवन सुखी और शान्त बन सकता है। इसके लिए एक कहावत चरितार्थ होती है कि **पहला सुख निरोगी काया** इस निरोगी काया के लिए प्राणी अनेक प्रयत्न करता है। वह अपना पूरा जीवन शरीर को निरोगी बनाने तथा संभालने में लगा देता है, परन्तु यह शरीर फिर भी रोगी बना रहता है। इसका कारण एक ही है कि वह कार्य तो निरोगी होने के करता नहीं पर निरोगी बनना चाहता है।

आचार्यों ने शरीर को निरोगी करने के लिए रात्रिभोजन त्याग करना जीवों के लिए आवश्यक बताया है। सभी जीवों में लगभग सभी शाकाहारी जीव तो रात्रि में आहार ग्रहण नहीं करते परन्तु मानव एक ऐसा मन विकसित प्राणी है, जो जानकर भी रात्रि में आहार ग्रहण कर अपनी काया को रोगी तथा आयु को कम करता है।

रात्रिभोजन का प्रारंभ कब, क्यों

जैनधर्म में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ भगवान ने असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या, वाणिज्य इन षट्कर्मों का उपदेश देकर कहा कि जीवन निर्वाह के लिए दया, अहिंसादि के पालन और स्वस्थ रहने के लिए दिन में श्रम करके, एक या दो बार शुद्ध शाकाहारी भोजन करो और रात्रि में विश्राम करो। इस प्रकार रात्रिभोजन पूर्णतः निषिद्ध था, परन्तु कालान्तर में युग परिवर्तन के साथ इसका प्रारंभ क्यों हुआ इस पर दृष्टिपात करने पर अनेक कारण सामने उपस्थित होते हैं।

रात्रिभोजन के कारण

1. रात्रिभोजन के कुप्रभावों की सही जानकारी का अभाव।
2. सामाजिक और नौकरी पेशे की अव्यवस्थाएँ।
3. कार्यालयों और दुकानों में भोजन अवकाश का समय निर्धारित न होना।
4. असमय में बालकों का स्कूल, कॉलेज और ट्यूशन आदि करना।
5. सुबह की चाय, नाश्ता, लंच आदि प्रारंभ होने से दिन में निर्धारित समय पर भूख नहीं लगना।
6. मन और इन्द्रियों पर नियंत्रण का अभाव।
7. भौतिक सुविधाओं की बढ़ती आवश्यकता और उसकी पूर्ति के कुप्रयास करना।

8. आर्थिक समस्याओं के समाधान हेतु रात-दिन श्रम करना ।
9. सूर्य और कृत्रिम प्रकाश में अन्तर की जानकारी का अभाव होना ।
10. पाश्चात्य संस्कृति व आधुनिकता का चरम सीमा पर प्रभाव ।
11. विवाह, पार्टी आदि में सामूहिक रात्रिभोजन को देखकर रात्रिभोजन त्यागी को व्यंग्य, तर्क-कुतर्क करके जबरन रात्रि भोजन करने को बाध्य करना ।
12. टी0वी0 सिनेमा आदि पर रात्रिभोजन में मौज-मस्ती का प्रदर्शन और चाट, लारी, होटल, भोजनालय आदि में रात दिन भोजन का उपलब्ध होना ।

रात्रिभोजन त्याग की आवश्यकता

रात्रिभोजन त्याग के महत्त्व को जानने के साथ-साथ हमें शारीरिक संरचना को जानना भी परम आवश्यक है। संसार के प्रत्येक प्राणियों के शरीर की संरचना भिन्न-भिन्न प्रकार का है। अलग-अलग आकार प्रकार से भोजन करने और पचाने की प्रक्रिया होती है। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य मानव शरीर है। वैज्ञानिक भी इस मानव शरीर के बारे में ऊहापोह में जुड़े हुए हैं कि आखिर यह मानव शरीर इतने वर्षों तक निरन्तर कैसे चलता रहता है, जो संवेदना से युक्त होता है। जो अच्छे-बुरे का ज्ञान करा देता है। जो अन्दर रासायनिक पदार्थों को तैयार करके आवश्यकता पड़ने पर बाहर निकालता रहता है। जो अन्दर ही अन्दर अपना भोजन पचाकर आवश्यक ऊर्जा देता रहता है। बाहरी रोगाणुओं से अपनी सुरक्षा करता रहता है, परन्तु जो इसकी प्रकृति के विरुद्ध आता है उसे तत्काल दण्ड भी देता है।

शाकाहारी एवं मांसाहारी प्राणियों की विशेषता

शरीर संरचनानुसार प्रत्येक प्राणी के भोजन का समय और प्रकार निर्धारित किया गया है।

शाकाहारी प्राणी

1. दांत नाखुन सपाट व चपटे होते हैं।
2. आंतें लम्बी होती हैं।
3. अंधेरे में आँखों से दिखाई नहीं देता है।
4. भोजन चबाचबाकर करते हैं।
5. पानी में मुख डालकर पीने वाले होते हैं।

मांसाहारी प्राणी

1. दांत नाखुन पैने होते हैं।
2. आंते छोटी होती है।
3. अंधेरे में आँखों से दिखाई देता है।
4. भोजन को बिना चबाये सीधे निगलजाते हैं।
5. जीभ से पानी पीने वाले होते हैं।

शाकाहारी प्राणियों की शरीर संरचनानुसार मानव शरीर की रचना होती है। अतः जैसे शाकाहारी पशु-पक्षी शाम को ही अपने गंतव्य स्थान पर जाकर समस्त क्रिया कलाप बन्द करके विश्राम करते हैं। वैसे ही मनुष्यों को अपने भोजनादि क्रिया कलापों को बंद रखना चाहिए।

प्रकृति विरुद्ध जाने वाले को प्रकृति द्वारा कभी क्षमा नहीं किया जाता बल्कि उसका जीवन संकट में पड़ जाता है। वर्तमान समय में नित्य नवीन रोगों की उत्पत्ति भोजन की अनियमितता के कारण से बढ़ती जा रही है। इनसे बचने का उपाय यही है कि-दिन में नियमित भोजन किया जाए और रात्रिभोजन त्यागकर प्रकृति के नियमानुसार जीवन का निर्वाह किया जाए। आचार्यों ने सूर्योदय के 48 मिनट बाद और सूर्यास्त के 48 मिनट पहले के काल को छोड़कर शेष काल को रात्रि की संज्ञा दी है। इसमें भोजन करना रात्रिभोजन करना कहलाता है। रात्रिभोजन त्याग करके ही मानव प्रत्येक नई बीमारियों से बच सकता है, क्योंकि वह दिवा भोजन में बाहर से आ रहे जीव जन्तुओं से तो अपना भोजन का बचाव कर सकता है परन्तु जब उसे रात को स्थूल जीव नहीं दिखते तो सूक्ष्म

जीव कैसे दिख सकते हैं, जिनकी उत्पत्ति मात्र अंधकार में होती है। वे हमारे भोजन में आकर हमारे स्वास्थ्य को खराब कर जाते हैं।

रात्रिभोजन क्यों नहीं ?

आज के मानव की विचारधारा प्राचीन विचारधारा से बिल्कुल भिन्न प्रतीत हो रही हैं। वह काम तथा भोजन के विषय में दिन रात को एक मानता है। जिस कारण वह प्रकृति से विपरीत जा रहा है। इसी अनियमितता के कारण दिवा भोजन को त्याग कर रात्रिभोजन को अपनाता जा रहा है। वह व्यक्ति जानता नहीं कि रात्रिभोजन करने से हमारी मानसिक भावनाएँ कितनी अशुद्ध होती जा रही हैं तथा भोजन में लम्पटता, मन की एकाग्रता समाप्त होना, आध्यात्म में उन्नति का अभाव आदि रात्रिभोजन से ही होता है।

मानसिक अशुद्धता

हम अशुद्ध भोजन को ग्रहण करके तन और मन दोनों को खराब कर रहे हैं भोजन के विषय में एक कहावत है कि **जैसा खावें अन्न वैसा होवें मन जैसा पीवें पानी वैसी होवें वाणी** अर्थात् मानव रात्रि में जीव जन्तुओं से मिश्रित हिंसक आहार को ग्रहण करके अपने आप को शाकाहारी कहता है, परन्तु वह इस बात से अनभिज्ञ है कि रात्रि में भोजन के साथ जिन जीवों का भक्षण वह अप्रत्यक्ष रूप से कर रहा है। वह भी जीवों की श्रेणी में आते हैं। उनकी भी हमारे द्वारा हिंसा हो रही है और जब हिंसक आहार हमारे शरीर में पहुँचता है तो हमारे शरीर की सप्तधातुएँ भी उसी हिंसक रूप में बनती हैं। जिससे हमारा मानसिक चिन्तन भी हिंसकों की तरह हो जाता है। हम किसी के विषय में अच्छा विचार नहीं कर पाते। जब हमें विचार आते हैं तो छलकपट पूर्ण विचार आते हैं। इसी कारण संसार में बहुत कम व्यक्तियों का मन छलकपट पूर्ण विचारों से रहित तथा दूसरों के प्रति सद्भाव पूर्ण हैं।

भोजन के प्रति लम्पटता

रात्रिभोजी व्यक्ति की विचारधारा इतनी निम्न हो जाती है कि उसकी भोजन की थाली में हर तरह का भोजन भी आ जाए तो वह उसे ग्रहण कर लेता है। शुद्ध अशुद्ध का विचार नहीं कर पाता है। भक्ष्य-अभक्ष्य उसके लिए समान हो जाते हैं। भोजन के प्रति गृद्धता के कारण अंधकार में जीव युक्त भोजन से भी उसे ग्लानी नहीं होती है। एक बार जीव युक्त भोजन का स्वाद चखने के बाद उसकी आदत खराब हो जाती है।

मन की एकाग्रता समाप्त होना

विश्व की समस्त पाप क्रिया लगभग रात्रि के अंधकार में होती हैं। पापी जीव सदा अंधकार की प्रतीक्षा करता रहता है। पाप वर्गणाएँ संसार में इस तरह फैल जाती हैं कि सदाचारी पुरुष रात्रि के अंधकार में कोई शुभ कार्य करने का विचार ही नहीं बना पाता इसलिए वैदिक धर्म तथा जैनधर्म में रात्रि में भगवान् की पूजा, भक्ति करना, यज्ञ करना, दान देना, श्राद्ध, पितृर्पण आदि शुभ कार्यों का निषेध किया है परन्तु भोजन जैसे शुभकार्य को रात्रिभोजी रात्रि में करते हैं तो उनके मन की अशुभ वर्गणाओं के साथ एकाग्रता नहीं बनती तथा प्रत्येक धर्म का लक्ष्य एकाग्र मन से आध्यात्मिक सुख की प्राप्ति है। जो रात्रिभोजी को कभी प्राप्त नहीं होती। दूसरे पक्ष में आयुर्वेदाचार्य कहते हैं कि रात्रिभोजन करने वाले की पाचन क्रिया सही नहीं होने के कारण वात, पित्त, कफ की प्रकृति में विकृति आ जाती है तथा मन की एकाग्रता के लिए इन तीनों की स्थिति का सही होना आवश्यक है। वात, पित्त, कफ से अस्वस्थ हुआ व्यक्ति यदि आध्यात्म सुख की साधना भी करता है तो उसका मन एकाग्र हो नहीं पाता। जिससे मोक्ष की साधना व्यर्थ हो जाती है इसलिए मोक्षाभिलाषी को सबसे पहले रात्रिभोजन का त्यागकर सूर्य प्रकाश में भोजन करना चाहिए।

सूर्य, प्रकृति और भोजन

सूर्य प्रकृति में प्रकाश का संचार करने के लिए तथा कार्य को सक्रिय रूप से संचालित करने के लिए सशक्त उपाय है तथा जीवों को अनेक रोगों से बचाने तथा जीवों को ऊर्जा प्रदान करने वाला मुख्य स्रोत है। विज्ञान का विकसित रूप होने के बावजूद भी विज्ञान प्रकृति के नियम और वस्तु के स्वभाव को नहीं बदल सकता। रात्रि में कुमुदिनी खिलेगी, कमल बंद होंगे, कीड़े-मकोड़े कृत्रिम प्रकाश में आएंगे। प्रकृति में कार्बनडाइआक्साइड गैस की वृद्धि होगी और सूर्य में जो ऊर्जा प्रदान करने, आक्सीजन वृद्धि करने, भोजन आदि पचाने की शक्ति और अन्य गुण धर्म पैदा करने वाले कृत्रिम प्रकाश की अपेक्षा सूर्य से ही मिलेंगे।

द यूनिवर्स इन द लाइट और माडर्न फिजिक्स पुस्तक में वैज्ञानिक प्लांक ने लिखा है कि सूर्य के बारे में जितना आज तक जाना समझा है वह उसकी तुलना में नगण्य है। प्राचीन ऋषियों ने पराविद्या द्वारा उसके सूक्ष्म रहस्यों को उद्घाटित किया था। उससे लाभान्वित होने के लिए ऐसे साधनों को अपनाया था जो अभी तक अवैज्ञानिक जैसा जान पड़ता था, परन्तु विज्ञान जैसे-जैसे सूक्ष्मता की ओर बढ़ रहा है, वैसे-वैसे ऋषियों की बात वैज्ञानिकता स्थापित करती जा रही है। भारतीय ऋषियों का प्रतिपादन सूक्ष्मविज्ञान पर आधारित रहा है।¹⁴

सूर्य की महत्ता

शरीर शास्त्री एवं भौतिक विज्ञान शास्त्री प्रोफेसर जॉर्ज लाखोवस्की अपनी रचना लिग्राण्ड प्रॉबलम में लिखते हैं कि- सूर्य, मंगल आदि समस्त ग्रह, उपग्रहों से आने वाली किरणें हमें निश्चित रूप से प्रभावित करती हैं। वह प्रभाव इतना सूक्ष्म होता है कि स्थूल यंत्रों के द्वारा देखने में नहीं आता।¹⁵

रात्रिभोजन त्याग उसी विज्ञान के अध्ययन का मार्ग है जिसकी

विज्ञान ने सूर्य की आरोग्यवर्धक क्षमता को स्वीकार करते हुए अभी कुछ अंशों में ग्रहण किया है। यदि दिवा भोजन पर सूर्य किरण के प्रभाव से संबंधित और अध्ययन किया जाए तो ज्ञात होगा कि बुद्धि विकास, मानसिक शक्ति, और आरोग्य संवर्द्धन की उसमें इतनी महान् सामर्थ्य है कि उस विद्या को अपनाने पर बड़े पैमाने पर बौद्धिक विकास और रोगों को दूर किया जा सकता है। इसी विषय पर अलैकजैण्डर कैनन चिकित्सा शास्त्री ने अपनी पुस्तक **दि इन विजीबल इन्फ्लूएन्स** में लिखा है कि सूर्य में कुछ ऐसी अदृश्य किरणें हैं, जिनके गुण, धर्म और उपयोगिता को समझा जा सके तो वरदान सिद्ध हो सकता है।¹⁶ डॉ० एफ० प्रिसेल्ड कहते हैं कि यदि धूप का उपयोग ठीक प्रकार से किया जाए तो स्वास्थ्य में स्थिरता लाई जा सकती है।

हृदयरोग विशेषज्ञ डॉ० मार्शल पोमेलोक्स ने लिखा है कि जब सूर्य मण्डल में तूफान आते हैं तब दिल के दौरे पड़ते हैं। डॉ० सोनी ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि सूर्य बाहरी चमड़ी मात्र पर ही असर नहीं डालता, बल्कि सभी पदार्थ सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करते हैं और वह सूर्य ऊर्जा ही उन पदार्थों को पचाने में सहयोगी बनती है। इसलिए रात्रि का भोजन समीचीन रूप से नहीं पचता है। सूर्य के बिना पृथ्वी पर प्राणी का जीवन संभव नहीं है। सूर्य सभी प्राणियों के लिए प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

संसार में सूर्य की महिमा को मात्र ऋषि मुनियों ने ही जाना नहीं है अपितु आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी सूर्य की महिमा को व्याख्यापित किया है। वैज्ञानिकों की पंक्ति में भौतिकविद् सर नारमल लाकपर एवं सर विलियम रैम्जे ने अपने अनुसंधान के आधार पर रंगीन सूर्य रश्मियों में हीलियम तत्त्व की सबसे पहले खोज की थी। उसके बाद अनेक वैज्ञानिकों ने वर्ण क्रम मापी स्पेक्ट्रोस्कोप की सहायता से अब तक अनेक तत्त्व खोज निकाले।¹⁷

रंगों की वैज्ञानिकता

वैज्ञानिकों का कहना है कि सूर्य प्रकाश के पीले रंग में पारा, आसमानी में एल्युमीनियम, हरे में सीसा, लाल में लोहा, नीले में तांबा, नारंगी में सोना व बैंगनी में चांदी का समावेश है, तथा पीले रंग की किरणें तिल्ली, लीवर, फेफड़े एवं पाचन प्रणाली के लिए उपयुक्त मानी जाती हैं। हरा रंग पीयूष ग्रंथि को सबसे अधिक प्रभावित करता है। जो वमन होने को रोकता है, मानसिक तनावों को दूर करता है और मांसपेशियों को सुदृढ़ बनाता है। आसमानी रंग चयापचय की प्रक्रिया को बढ़ाने में सहायक होता है यह शरीर की अतिरिक्त गर्मी को कम करता है। नीला रंग भक्ति, प्रेम, अनुराग आदि शुभ भावनाओं को जाग्रत करता है। घ्राणेन्द्रिय, श्रोतेन्द्रिय, चक्षु इन्द्रिय को स्वस्थ बनाए रखने में सहायक है। यह पैराथायराइड ग्रन्थि को भी प्रभावित करता है। बैंगनी रंग सोडियम और पोटेशियम के संतुलन को बनाये रखता है। यह जीवन शक्ति बढ़ाने वाले ल्यूकोसाइट्स नामक रक्त कणों के निर्माण में सहयोगी है। यह मस्तिष्क की दुर्लभता में टॉनिक का कार्य करता है और मन का केन्द्रीकरण करता है।¹⁸ लाल रंग की किरण के विषय में सुप्रसिद्ध रंग चिकित्सा वैज्ञानिक मैरी एंडर्सन द्वारा रचित कृति **क्लर हीलिंग** में बताया कि लाल रंग अग्नि तत्त्व का द्योतक है। इससे तंत्रिका तंत्र प्रभावित होकर शरीर में एड्रीनेलीन हारमोन्स की मात्रा को बढ़ाता है। जो तंत्रिकाओं और स्नायुओं को क्रियाशील बनाता है। रक्त प्रवाह को तीव्र करता है। सिम्पैथेटिक नर्वस सिस्टम एवं सेरीवो स्पाइनल नर्वस सिस्टम को सक्रिय करता है।¹⁹ अतः शरीर में जिन खनिज तत्वों की कमी से जो रोग उत्पन्न हुआ हो उसे सूर्य किरणों से दूर किया जा सकता है।

वर्षाकाल में हमें इन्द्रधनुष के सातरंग दिखाई देते हैं। उसमें लाल रंग के ऊपर इन्फ्रारेड व बैंगनी रंग के नीचे अल्ट्रावायलेट आँखों से न दिखने वाली अदृश्य किरणें होती हैं ये किरणें अनन्तकाल से अपना कार्य कर रही हैं परन्तु वैज्ञानिक डब्ल्यूरिटर ने सन् 1801 में खोज की थी कि

ये अल्ट्रावायलेट और इन्फ्रारेड किरणें रासायनिक परिवर्तन के लिए अत्यंत सक्रिय रहती हैं इसलिए इन्हें क्रियाशील किरणें भी कहा जाता है। ये प्रकाश, विद्युत प्रभाव उत्पन्न करती हैं। गैसों को आयनित करती हैं और कीटाणुओं को नष्ट करती हैं। यही कारण है कि दिन में सूर्य किरणों की उपस्थिति में ये कीटाणु अंधेरे स्थानों में छिपे रहते हैं तथा अंधेरे स्थानों में इनकी अत्यधिक मात्रा में उत्पत्ति होती रहती हैं तथा ये सूर्य के प्रकाश का सामना करने पर नाश हो जाते हैं अतः जब सूर्य अस्त हो जाता है तो ये जीवाणु स्वतंत्र रूप से विचरण करने लगते हैं। जब हम रात्रि भोजन करते हैं तो ये जहरीले जीवाणु हमारे भोजन में आकर हमारे पेट का निवाला बन जाते हैं। रात्रिभोजन करने से इन जीवों का नाश तो होता ही है, अपितु रात्रिभोजी प्राणी के स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिए जैनधर्म में रात्रि में चलना, फिरना, भोजन करना, इत्यादि प्रवृत्त्यात्मक क्रियाओं का निषेध किया गया है। वैज्ञानिकों का मानना है कि अल्ट्रावायलेट और इन्फ्रारेड ये दोनों किरणें सूर्योदय के 48 मिनट बाद से सूर्योस्त के 48 मिनट पहले तक प्रभावशाली रहती हैं। इसीकारण जैनाचार्यों ने कहा है कि सूर्योदय के 48 मिनट पश्चात् और सूर्योस्त के 48 मिनट पूर्व भोजन करना चाहिए।²⁰

सूर्य और कृत्रिम प्रकाश

विश्व में अनेक प्रकृति की विचारधारा वाले लोग निवास करते हैं। जिनका मन्तव्य है कि भोजन तो भोजन है चाहे वह दिन में ग्रहण किया जाए या रात में, इसमें कोई अंतर नहीं होता। उनका कहना होता है कि प्राचीन समय में लोगों के पास कृत्रिम प्रकाश नहीं था इसलिए वह सूर्य प्रकाश में भोजन करते थे परन्तु वर्तमान समय में कृत्रिम प्रकाश होने पर सूर्य प्रकाश की पूर्ति हो जाती है वर्तमान वैज्ञानिक कृत्रिम प्रकाश और सूर्य प्रकाश के विषय को प्रकाशित करते हुए कहते हैं कि बिजली या दीपक का प्रकाश कितना भी तेज क्यों न हो उसमें भोज्य पदार्थ अच्छी तरह से देखने में नहीं आते और इस कृत्रिम प्रकाश में सम्मूर्च्छन जीवों

की उत्पत्ति उसी रंग की होती है जिस रंग के खाद्य पदार्थ होते हैं। उस प्रकाश में ऐसी शक्ति नहीं होती जिससे वे उन जीवों की उत्पत्ति को रोक सके परन्तु सूर्य प्रकाश में ऐसी शक्ति होती है जिससे उन जीवों की उत्पत्ति नहीं हो पाती।

सूर्य प्रकाश और विद्युत प्रकाश में विशेष अन्तर है। दिन में सूर्य का प्रकाश एक लाख लक्स के बराबर होता है और बादल छाये रहने पर भी दस हजार लक्स तो होता ही है जबकि घरों में रात्रि के समय कृत्रिम प्रकाश सामान्यतः 200 से 500 लक्स तक होता है। वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि प्रकाश से हमारी ग्रन्थियाँ प्रभावित होती है जैसे सूर्यास्त होने पर अंधेरे में पिनियल ग्रन्थि में से मैलाटोनिन नामक द्रव्य निकलकर रक्त प्रवाह में मिलता है। जिससे शरीर सोने के लिए तैयार होता है। रक्तचाप एवं शरीर का ताप कम होता है। पित्त शांत एवं वायु में वृद्धि होती है। उन्हीं रासायनिक परिवर्तनों के कारण रात्रि में अचेत और दिन में सचेत रहते हैं क्योंकि दिन निकलते ही मैलाटोनिन द्रव्य का स्राव बंद हो जाता है यदि कोई वर्तमान रात्रिभोजी प्राणी इस मैलाटोनिन ग्रंथि के स्राव को कृत्रिम प्रकाश से रोकना चाहे तो यह असंभव है क्योंकि इसको प्रभावित करने के लिए कम से कम एक हजार लक्स प्रकाश की आवश्यकता होती है, जो कृत्रिम प्रकाश में असंभव है। जब रात्रिभोजी अपने शरीर के अन्दर की एक ग्रन्थि के स्राव को कृत्रिम प्रकाश से नहीं रोक सकता तो बाह्य वातावरण में उत्पन्न होने वाले जहरीले जीवाणुओं को कृत्रिम प्रकाश से कैसे रोक पायेगा अर्थात् नहीं रोक सकता।

यदि हम रात में शयन के समय भोजन करते हैं तो इसके दूरगामी परिणाम हमारे शरीर से विपरीत होंगे।

1. पाचन
2. आयु
3. कैंसर
4. हृदयरोग
5. मानसिक असंतुलन
6. अकाल में वृद्धावस्था
7. रोग प्रतिरोधक क्षमता में कमी
8. दिन में आलस्य, आँखों में जलन

जैसे रोगों में वृद्धि होती है। प्राचीन समय में व्यक्ति दिन में काम और रात में आराम करता था, परन्तु आज लोगों का प्रकृति के साथ तालमेल बिगड़ गया। जिससे लोगों की जिन्दगी रोगी और तनाव युक्त और बोझिल हो गई है।

रात्रिभोजन और शरीर

रात्रिभोजन त्याग के विषय में हैदराबाद में स्थित कौशिकीय एवं आणविक जीव विज्ञान केन्द्र के भारतीय वैज्ञानिकों ने अप्रैल-मई सन् 1995 में अध्ययन करके बताया कि रात्रिभोजन त्याग कर कुछ समय भूखा रहने से शरीर कमजोर नहीं पड़ता बल्कि स्वस्थ, तरोताजा और हृष्ट-पुष्ट बनता है, क्योंकि रात दिन भोजन करते रहने से शरीर में ग्लाइकोजीन जमा होती रहती है। यह विशेष तौर पर लिवर और पेशियों में जमा होती है जो भूख के समय काम आती है। यही ग्लाइकोजीन शरीर में स्थित कुछ एंजइमों की मदद से खाली पेट रहने पर ग्लूकोज में विघटित होकर आवश्यक ऊर्जा देती है।²¹ जो रात्रिभोजन त्याग न करके रात्रि में अमाशय खाली नहीं रखता, उसके लिवर और पेशियों में जमा ग्लाइकोजीन टूटकर ग्लूकोज में परिवर्तित नहीं होती है। जिससे शरीर के अंगोपांग, त्वचा, हड्डी, हृदय, स्नायु पेनक्रियाज, किडनी, खून, फेफड़े, मस्तिष्क और अन्य ग्रंथियों को आवश्यक पोषण प्राप्त नहीं होता, जिससे शरीर में घातक प्रभाव पड़ता है।

सूर्य किरण और हृदयतंत्र

आयुर्वेद में शरीर के दो आवश्यक अंगों की संज्ञा कमल से दी गई है। जिसमें हृदय और नाभि का नाम उल्लेखनीय है। जिसप्रकार सूर्य की किरण के साथ कमल खिलता है और सूर्यास्त पर स्वयं संकुचित हो जाता है, उसी प्रकार हृदयकमल और नाभिकमल भी सूर्योदय में अपना काम करना प्रारंभ करता है और सूर्यास्त में अपने काम की गति प्रायः बंद

कर देता है अर्थात् पाचन क्रिया का, खून का बनना तथा खून का संचार मंद हो जाता है जिससे रात्रि में थकान महसूस होने लगती है। यदि इस स्थिति में रात्रि भोजन किया जाए तो पाचन क्रिया पूर्णरूप से चालू नहीं हो पाती जिससे खट्टी डकारे आना, पेट कड़ा होना, वायु का प्रकोप बढ़ जाना, सिरदर्द, पैरदर्द, शरीर में थकान आदि बीमारियाँ प्रारंभ हो जाती हैं। सूर्यास्त होने पर आयुर्वेदाचार्य रात्रिभोजन के संबंध में कहते हैं कि हृदयकमल और नाभिकमल के बंद होने से फेफड़े पर्याप्त मात्रा में ऑक्सीजन ग्रहण नहीं कर पाते हैं। इसी कारण पाचन तंत्र अस्त व्यस्त हो जाता है। आधुनिक डॉक्टर इस कमल को हृदय में थाईमस ग्रन्थि का रूप कहते हैं। यह ग्रन्थि अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसे वैज्ञानिक बच्चों की दाई माँ की उपमा देते हैं, क्योंकि यह समस्त रोगों से रक्षा करती है और बालकों के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास में सहायक है क्योंकि यह विशेष प्रकार की ऐन्टीबाडीज बनाकर बालक के शरीर में इम्यूनसिस्टम की स्थापना करते हैं। यदि यह ग्रन्थि अपना काम सुचारू रूप से न करे तो बालक बीमार पड़ जाता है।

जब शरीर का पूर्ण विकास हो जाता है तब यह ग्रन्थि सिकुड़ जाती हैं और अपना कार्य करना बंद कर देती है परन्तु जब हमारा भोजन असंतुलित, प्रदूषित, बार-बार मात्रा से अधिक और असमय में होता है तब पाचनतंत्र खराब हो जाता है, अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक विकृतियाँ आ जाती हैं। यहाँ तक की हमारे खान पान के विकृत हो जाने से समय और मात्रा आदि का ध्यान न रखने से एसेडिटी, अल्सर, कैंसर जैसे अनेक रोग पैदा हो जाते हैं। डॉक्टर हृदयकमल और नाभिकमल में रात्रिभोजन का प्रभाव बताते हुए कहते हैं कि रात्रिभोजन करने पर आंतों द्वारा भोजन को आगे बढ़ाने की क्षमता में कमी हो जाने पर भोजन का उर्ध्वगमन होने लगता है तथा अम्ल में वृद्धि होने से अमाशय में जलन होने लगती है, जिससे एसीडिटी और अल्सर हो जाता

है। यह तो नाभिकमल के अस्त-व्यस्त होने से होता है तथा हृदयकमल में रात्रिभोजन के दुष्प्रभाव होने से हृदय की ओर रक्त प्रवाह में कमी होती है और वातावरण में ऑक्सीजन की कमी होने से रक्तप्रवाह में और अधिक कमी हो जाती है। जिससे हृदय रोग होने की अत्यधिक संभावना होती है।

दिन में दो बार शुद्ध शाकाहारी सात्विक पेटभर 3000 कैलोरी भोजन और तीन चार लीटर जल मानव का संतुलित आहार है। जबकि रात्रिभोजन तामसिक मात्रा में अधिक और बार-बार भोजन असंतुलित आहार है। जो शरीर में विषैले पदार्थों का निर्माण करता है। ये विषैले पदार्थ कोशिकाओं में पाये जाने वाले ऑक्सीजन को उत्तेजित करते हैं। जिससे अनावश्यक रूप से अधिक कोशिकाओं का निर्माण होता है। दीर्घ काल तक विषैलापन बना रहता है, जो श्लेष्म झिल्ली पर दुष्प्रभाव डालता है और शारीरिक क्रिया धर्म के विरुद्ध आनुवांशिक पदार्थों में परिवर्तन लाता है यही बाद में न्यूप्लाज्म की उत्पत्ति करता है, इसे साधारण भाषा में कैंसर कहते हैं। कैंसर जैसे भयानक रोग पैदा हो जाने से हमारी थाइमस ग्रन्थि पुनः क्रियाशील हो जाती है तथा रात्रि भोजन थाइमस ग्रन्थि के पुनः कार्यरत होने में और अन्य बीमारी का कारण है।

रात्रिभोजन और पाचनतंत्र से उत्पन्न रोग

प्रत्येक प्राणी के मुख में लार ग्रन्थि होती है। जब भोजन को मुख से चबाया जाता है तब लार ग्रन्थि से लार भोजन में मिल जाता है। जिससे टाईलीन एलाइलेज नामक एन्जाइम उत्पन्न होता है। जो कार्बोहाइड्रेट्स को पचाने में सहायता करता है। जब चबाया हुआ भोजन अमाशय में जाता है तो वहाँ पर जठर रस स्रवित होता है और वे पेटसिन, टेनिन तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल आदि पाचक रसायन भोजन में मिल जाता है, जो प्रोटीन को पचाने में मदद करते हैं। अमाशय में लगभग चार घंटे तक दही मंथन जैसी क्रिया चलती रहती है। जिससे भोजन, छाछ जैसा तरल हो

जाता है यही तरल पदार्थ अमाशय के संकुचित होने से पक्वाशय में चला जाता है।

रात्रिभोजन करने तथा उसके बाद सोने से आहार नाल की सामान्य गतिशीलता प्रभावित होती है तथा भोजन अधिक समय तक अमाशय में ही रखा रहता है जिससे न केवल पाचन की क्रिया प्रभावित होती है साथ ही अगले दिन मल त्यागने में भी विलम्ब होता है। जिससे कब्ज तथा उससे जनित अनेक रोग जैसे हर्निया, बवासीर इत्यादि रोग हो सकते हैं।

जो व्यक्ति रात्रिभोजन करते हैं या दिन में भोजन के उपरान्त सो जाते हैं उनके अमाशय में मंथन क्रिया के ठीक ढंग से न हो पाने के कारण पाचन नहीं हो पाता है और उर्ध्व गैस, ऑव, वात, अल्सर, डायरिया, कैंसर, पेनक्रियेटाइटिस कैंसर, हिपेटाइटिस एवं लीवर फेलिया जैसे जानलेवा रोग होने की पूर्ण संभावना बढ़ जाती है। एक समाचार पत्र के अनुसार न्यूकैस्टल यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने काम करते, सोते और खाते समय व्यक्तियों में स्रावित जठर रस एवं अन्य रासायनिक पदार्थों की मात्रा मापी तो वैज्ञानिकों ने पाया कि आंत की आंतरिक झिल्लियों के टूटने, चोट पहुँचाने एवं घाव को भरने वाला स्पास्मोलाइटिक पालीपेप्टाइड नामक प्रोटीन रात को सोते समय ही निकलता है, परन्तु रात में भोजन के बाद सोने पर उसका स्राव नहीं होता फलस्वरूप अल्सर का खतरा बढ़ जाता है।²² इसीकारण डॉक्टर आयुर्वेदाचार्य गैस, अल्सर की बीमारी वालों को दिन में सोने का एवं रात्रि में भोजन करने का निषेध करते हैं और शाम को सूर्यास्त के पूर्व हल्के सुपाच्य भोजन करने की सलाह देते हैं।

मोटापा क्यों ?

अमाशय में भोजन बिलोने की क्रिया ठीक ढंग से हो सके, इसके लिए ठूस-ठूस कर नहीं खाना चाहिए। दिन में एकबार भोजन करने के

बाद दूसरी बार भोजन करने का अंतर छः, सात घंटे का होना चाहिए और रात्रि में अमाशय को कम से कम आठ नौ घंटे तक आराम देना चाहिए अन्यथा पाचनतंत्र और शिथिल होता है और चर्बी बढ़ती है, ऐसा वैज्ञानिकों का कहना है। रात्रि में भोजन करके जितनी कैलोरी ग्रहण करके सो जाते हैं उनका व्यय नहीं हो पाता क्योंकि निद्रा के समय कैलोरी की खपत न्यूनतम होती है। अतः इन कैलोरी का संचय होता रहता है, जिससे मोटापा निरंतर बढ़ता जाता है। मोटापे को आधुनिक समाज का सर्वाधिक घातक रोग माना जाता है। क्योंकि इससे अनेक प्रकार के रोग होते हैं। मोटे लोगों में उच्च रक्त चाप हो जाता है, हृदयरोगों की संभावना बढ़ जाती है तथा ऐसे लोगों में पित्ताशय की पथरी एवं मधुमेह रोगों की संभावना बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त मोटापे से संबंधित ऑस्टिओथ्रोइटिस, फूली हुई नसे, हार्निया, शरीर में ढीलापन, इत्यादि रोग हो जाते हैं, इस कारण रात्रिभोजन घातक है।

रात्रिभोजन से अग्राशय संबंधी रोग

हमारे शरीर में पाचक रस देने वाली अनेक प्रकार की ग्रन्थियाँ होती हैं। उनमें एक पेनक्रियाज नाम की ग्रन्थि होती है, जिसमें लाइपेज, अमाइलेज, ट्रिपसीन नामक एन्जाइम होते हैं। जो प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट तथा वसा को पचाने में सहायता करते हैं। पेनक्रियाज इन्सुलिन भी उत्पन्न करती है। यही इन्सुलिन खून में शर्करा की मात्रा का संतुलन बनाये रखती है, परन्तु गहरी नींद में सोये रहने पर अचानक जगा देना, भय उत्पन्न करना, चिन्ता करना, क्रोध करना, इत्यादि इस अवस्था में जब शरीर को आकस्मिक कार्य करना पड़ता है तो एड्रिनल ग्रन्थि से रसायन का स्राव अधिक बढ़ जाता है और पेनक्रियाज इन्सुलिन उत्पन्न करना बंद कर देता है। ऐसा बार-बार होता है तो एड्रिनल ग्रन्थि को उत्तेजित होकर अधिक कार्य करना पड़ता है, जिससे मधुमेह नाम का रोग हो जाता है। यदि पेनक्रियाज अधिक कार्य करता है तो ग्लूकोज का व्यय अधिक होने

लगता है परिणाम स्वरूप निम्न रक्तचाप, पेट में दाह, गैस, सिरदर्द आदि अनेक बीमारियों के शिकार बन जाते हैं। यदि व्यक्ति रात्रि में भोजन न करके पेनक्रियाज ग्रन्थि को आराम देता है तो पाचन क्रिया की क्षमता में वृद्धि होगी और इन रोगों से बचाव होगा।

रात्रिभोजन का त्वचा पर प्रभाव

विश्व के सभी आधुनिक सूर्य चिकित्सा शास्त्रियों ने सूर्य किरणों पर गहन अनुसंधान करके बताया है कि सूर्य किरणों में लाल व श्वेत रक्त कणिकाओं में कैल्शियम, फास्फोरस, फास्फेट, आयोडीन आदि तत्त्वों में समन्वय व संतुलन बनाने की अद्भुत क्षमता होती है।²³ सूर्य प्रकाश में आरोग्यदायी, भोजन पचाने वाले और ऊर्जा देने वाले अनेक तत्त्व मौजूद रहते हैं। जिन्हें पेड़-पौधे तो ग्रहण करते ही है, उन्हीं के कारण प्राणी स्वस्थ रहते हैं और टी.वी. जुखाम, चर्म रोग आदि में लाभ पाते हैं। धूप स्नान से शरीर का तापमान बढ़ जाता है। जिससे खून गर्म और उत्तेजित हो जाने से शुद्ध हो जाता है। थायराइड ग्रन्थि को अपना कार्य करने में आसानी होती है, भोजन का पाचन ठीक ढंग से होता है, त्वचा पर स्थित हानिप्रद जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। त्वचा के भीतर स्थित फेट्स क्रियाशील हो जाता है। जिससे त्वचा पतली व मुलायम, शरीर शक्तिशाली एवं निरोगी बना रहता है, परन्तु रात्रिभोजन से फेट्स जमा हो जाता है जिससे त्वचा और शरीर मोटा हो जाता है अतः रात्रिभोजन त्याग से पाचन संबंधी और त्वचा संबंधी रोगों से बचाव हो सकता है।

रात्रिभोजन और हड्डियों की सक्रियता

हमारे शरीर की त्वचा में कुछ ऐसी तैलीय ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। जिसमें डी-7 हाड्रोकालेस्टीरोल नामक रसायन स्रावित होता है। जो सूर्य के प्रकाश में विटामिन डी कैल्सीफेरॉल का संश्लेषण करता है। इसमें दो घटक होते हैं, डी-3 आरगोकेल्सी फेरॉल और डी-4 कॉलीकेल्सी

फेरोल। ये कैल्शियम और फास्फोरस का अवशोषण बढ़ाकर उन्हें हड्डी निर्माण हेतु प्रेषित करती हैं। जो रात्रि भोजन करते हैं और दिन में सूर्य प्रकाश में न रहकर भवनों में रहते हैं उन्हें कैल्शियम एवं फॉस्फोरस की कमी हो जाती है। जिससे बच्चों को रिकेट्स तथा वृद्धों को आस्टियो मेलेसिया रोग होता है। इन रोगों से अस्थियाँ कमजोर हो जाती हैं।

सूर्य प्रकाश अर्गोस्टेराल को विटामिन डी में बदल देता है। विटामिन डी हमारे भोजन को पचाने वाली आंतों में अम्ल और क्षार प्रेषित करता है। भोजन में उपस्थित कैल्शियम, फॉस्फोरस आदि खनिज तत्वों को उत्प्रेरित करता है। तत्पश्चात् उसे आंतें अवशोषित कर शरीर के विभिन्न अंगों को संचालित कर देती हैं, परन्तु जो व्यक्ति रात्रिभोजन करते हैं, उन्हें 12 घंटे तक सूर्य की किरणें नहीं मिल पाने से ग्रहण किये गये भोजन में उपस्थित तत्वों को शरीर ग्रहण नहीं कर पाता है और बिना पाचन के ही मल द्वारा निष्कासित हो जाता है।

रात्रिभोजन और फेफड़ों पर प्रभाव

यदि व्यक्ति रात्रि 1 बजे सोता है तो प्रातः काल लगभग 5 बजे शुद्ध प्राणवायु के समय सोकर उठ नहीं सकता। लगभग वह 8 व 8:30 बजे सोकर उठेगा। अतः शुद्ध प्राणवायु न मिलने से कोशिकाओं में ऑक्सीजन के न मिलने से फेफड़े ठीक ढंग से कार्य नहीं कर सकते हैं। फेफड़ों का फूलना और साफ होना जरूरी है। परन्तु जब हम रात्रिभोजन करके सो जाते हैं तो वायु को भीतर जाने और बाहर आने के मार्ग में अवरोध सा पैदा हो जाता है। फेफड़े ठीक ढंग से संकोच विस्तार नहीं कर पाते और यदि कफ, दमा आदि कोई रोग हो तब अधिक बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाती हैं। ऐसे में व्यक्ति का दम भी घुट सकता है।

यदि रात्रिभोजन त्याग कर दिन में हल्का सुपाच्य भोजन किया जाए, सोने से पूर्व और सोकर उठने के बाद खुली हवा में दीर्घ सांस लेकर

धीरे-धीरे छोड़ी जाए, खाली पेट में प्राणायाम किया जाए, प्रातः काल अपनी शक्ति अनुसार योगासन किया जाए। इससे फेफड़ों की शक्ति बढ़ेगी, रक्त शुद्ध होगा और शरीर की बीमारियाँ दूर होंगी।

जैनधर्म में रात्रिभोजन

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जैनधर्म में रात्रिभोजन त्याग सिद्धांत के विषय में जो मन्तव्य प्राप्त होते हैं, वहीं आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी रात्रिभोजन त्याग को स्वास्थ्य के लिए लाभदायक सिद्ध किया है। जैनधर्म में जहाँ अन्य जीवों की हिंसा के कारण रात्रिभोजन का निषेध किया है। वही स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए पं० आशाधर जी सागार धर्माभूत में रात्रिभोजन से होने वाले दोषों के विषय में कहते हैं कि यदि रात्रिभोजी जीव के शरीर के अन्दर भोजन के साथ जू का प्रवेश हो जाए तो जलोदर रोग, मकड़ी और छिपकली से कुष्ठरोग, मक्खी से वमन (उल्टी), बिच्छू से तालुगत रोग, कुण्टक नामक कीड़े से गले का रोग, बाल से स्वरभंग तथा जहरीले सर्प इत्यादि रात्रिभोजन के साथ शरीर में प्रवेश हो जाए तो मृत्यु तक हो जाती है।²⁴ प्राचीन समय में धार्मिक वातावरण के कारण आचार्यों ने धार्मिक कारणों को उपस्थित करके रात्रिभोजन का निषेध किया परन्तु इन धार्मिक कारणों की पृष्ठभूमि में शारीरिक स्वास्थ्य और धार्मिक क्रियाएँ दोनों का समावेश था, क्योंकि धार्मिक व्यक्ति रात्रिभोजन के कारणों से अस्वस्थ हो जाता है तो वह जब तक स्वस्थ नहीं होगा तब तक उसका धार्मिक आचरण और क्रियाएँ दोनों में अवरोध उत्पन्न होता है इस प्रकार रात्रिभोजन त्याग से इहलोक संबंधी शारीरिक स्वस्थता तथा परलोक संबंधी धार्मिक क्रियाएँ दोनों चलती रहती हैं। रात्रिभोजन त्याग के विषय में आचार्य अमितगति जी ने अमितगति श्रावकाचार में कहा है कि जो पुरुष मन, वचन, काय से रात्रिभोजन का परित्याग करके सदा ही दिन में भोजन करता है पाप से रहित उस पुरुष का रात्रि में भोजन के परित्याग से आधा जन्म उपवास के साथ व्यतीत होता है।²⁵

जैनधर्म में रात्रिभोजन के विषय में कहा है कि सूर्यकिरण में भोजन करने के साथ-साथ रोशनी में बना भोजन ग्रहण करना चाहिए अन्यथा सूर्य किरण के अभाव में बनाया गया भोजन प्रोटीन आदि अवयव प्रदान नहीं कर पाते और वह भोजन भी रात्रि में भोजन करने के समान कहा गया है। इस रात्रिभोजन त्याग को आचार्यों ने श्रावक के तीन कर्तव्यों में से एक कर्तव्य माना है तथा व्रती श्रावकों के लिए रात्रिभोजन त्याग प्रतिमा का निर्देश देकर दूसरों को रात्रिभोजन कराने तथा करते हुए की प्रशंसा करने का भी निषेध किया है। जिससे रात्रिभोजन करने के प्रति हमारे मन में भी वह भावना पल्लवित न हो अर्थात् मन, वचन, काय से रात्रिभोजन का निषेध किया है।

आधुनिक मानव एवं वैज्ञानिक अन्य जीवों के अहिंसा रूप प्राणों के हित के विषय में विचार भले ही न करे परन्तु रात्रिभोजन में उन जीवों के घात से स्वयं को होने वाले शरीर संबंधी हित का तो विचार अवश्य कर सकते हैं। क्योंकि मानव एक मन विकसित प्राणी है। वह दूसरे के हित का विचार करें या न करे परन्तु अपने हित का विचार तो अवश्य ही करता है। इसीकारण शरीर संबंधी थोड़ी से तकलीफ होने से आज चिकित्सकों के यहाँ भीड़ बढ़ रही है। इन अहितों की ओर समय रहते यदि ध्यान दिया गया तो चिकित्सकों की आवश्यकता हमारे जीवन में कम ही पड़ेगी। हम सदा निरोगी हो सकते हैं। वैज्ञानिकों ने भी धार्मिक शास्त्रों का समर्थन करते हुए कहा है कि यदि मनुष्यों को जीवन में निरोगी रहना है तो सूर्य प्रकाश में ही भोजन संबंधी समस्त प्रवृत्तियों को करना चाहिए अथवा सूर्य प्रकाश के अभाव में रोगों से स्वयं को आवृत्त करके सम्पूर्ण जीवन कष्ट के साथ व्यतीत करने का प्रयास करे।

सूर्यकिरण लाभकारी

आधुनिक परिप्रेक्ष्य के वैज्ञानिकों ने इन दुःखों से तथा रोगों से बचाव के लिए सूर्य किरणों का सद्भाव तथा रात्रिभोजन का निषेध करते

हुए सूर्य किरणों से रोगों का निदान तथा रात्रिभोजन से रोगों की उत्पत्ति का निरूपण किया है सूर्यकिरण से रोगों के निदान के लिए कहा है कि सूर्यकिरण में किये गये भोजन से पाचनतंत्र संबंधी हृदयतंत्र, अग्राशय, फेफड़ों, त्वचा, हड्डियों, मस्तिष्क, खून, दांत, संबंधी रोगों का निदान होता है। जैसे-कब्जियत, उर्ध्वगैस, आंव, वात, अल्सर, डायरिया, कैंसर, पेनक्रियेटाइटिस कैंसर, हिपेटाइटिस एवं लीवरफेलिया, एसीडिटी, हार्टअटैक, खट्टी डकार, पेटकड़ा होना, सिरदर्द, पैरदर्द, शरीर में थकावट, ऑक्सीजन में कमी, मधुमेह, लो ब्लडप्रेसर, पेट में दाह, खून संचार में कमी, खून में शुद्धता की कमी, सीने में दर्द, सफेद दाग, टी.वी., जुखाम, चर्म रोग, मोटापा, रिकेट्स, आस्टीयो मेलेसिया, कैल्शियम, फास्फोरस की कमी, कार्बनडाइआक्साइड की अधिकता, मस्तिष्क का कमजोर होना, पायरिया, आदि रोगों का निदान, सूर्य के प्रकाश में भोजन करने से होता है। इनसे विपरीत रात्रिभोजन करने अथवा अंधेरे में भोजन करने से हमारे भोजन में सूर्य किरण संबंधी लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है जिससे इन सभी रोगों की उत्पत्ति की संभावना हो जाती है।

निष्कर्ष

अतः सुखी जीवन के लिए वैज्ञानिक दृष्टि के साथ धार्मिक दृष्टि का समन्वय अति महत्त्वपूर्ण है तथा रात्रिभोजन त्याज्य है।

आहार का स्वरूप

प्रत्येक प्राणी के जीवन में चार संज्ञाएँ पाई जाती हैं। जिसमें से आहार संज्ञा जीवन जीने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। बिना आहार के जीवन की सभी क्रियाएँ निरर्थक हो जाती हैं। आहार प्राणी के शरीर में स्फूर्ति, बलिष्ठा तथा शरीरिक क्षमता को बनाये रखता है। आहार शब्द की निष्पत्ति आङ् उपसर्ग पूर्वक ह धातु से घञ् प्रत्यय लगने से हुई है, जिसका अर्थ लाना या भोजन करना है। आहार से विचारों में परिपक्वता आती है। श्रेष्ठ आहार श्रेष्ठ विचारों को जन्म देता है। **आहार शुद्धौ सत्त्व**

शुद्धौ यह सूत्र इस बात का उद्घोषक है कि भोजन की शुद्धि से जीव की शुद्धि होती है। गाली और गीत का संबंध भोजन से ही है। भोजन से ही भजन और भंजन की भूमिका तैयार होती है। इसलिए हमें अपने भोजन के लिए सिर्फ पेट भरने वाला भोजन नहीं मानना चाहिए। खानपान का सीधा संबंध शरीर से होता है। शरीर का संबंध मन और स्वास्थ्य से होता है। मन का संबंध विचारों और भावों से होता है और भावों का संबंध पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक, न्याय-अन्याय, सुख-दुःख, शान्ति-अशान्ति और संसार-मोक्ष से होता है। इसलिए प्राणियों को ऐसा आहार ग्रहण करना चाहिए जो मन को आनन्दित करें, शरीर की पाचन शक्ति को बढ़ायें, सातों धातुओं में शीघ्रता से परिवर्तित हो जाए तथा रोग निरोधक क्षमता में वृद्धि कराये।

आहार की आवश्यकता

प्रत्येक प्राणी को जीवन प्रिय तथा मरण अप्रिय लगता है। जीवन के लिए अन्य आवश्यक सामग्री में आहार प्रमुख है, क्योंकि आहार ही जीवों के विचार को परिवर्तित तथा परिवर्धित करता है। आहार से जहाँ शारीरिक स्वास्थ्यता प्राप्त होती है वहीं मानसिक स्वास्थ्यता में भी लाभ होता है। हमारे शरीर के स्वस्थ निर्माण व विकास के लिए 80 प्रतिशत क्षारीय व 20 प्रतिशत अम्लीय आहार की आवश्यकता होती है। इन तत्वों के समानुपात से विद्युत चुम्बकीय जीवनी शक्ति का निर्माण व संवर्धन होता है।²⁶ जो कि शुद्ध अहिंसक आहार से प्राप्त हो सकता है। शरीर के लिए प्राचीन काल से ही बलवर्धक आहार को ग्रहण करने का निर्देश दिया गया है। जहाँ मुनियों को आहार दान देने का निर्देश है वहीं आहार देते समय दाता को निर्देश दिया गया है कि वह साधुओं को गुणकारी, बलवर्धक तथा आरोग्यवर्धक आहार दान दे। अतः बलवर्धक आहार के लिए जहाँ शास्त्र हिंसा रहित भोजन करने को कहते हैं वहीं आधुनिक विज्ञान भी स्वस्थ शरीर के लिए आहारिक अवयवों की मान्यता की पुष्टि करता है जो निम्न हैं-

1. **कार्बोहाइड्रेट**- कार्बोहाइड्रेट शरीर निर्माण में प्रमुख उत्तरदायी अवयव है। इससे शरीर में जल, शक्ति तथा गर्मी उत्पन्न होती है। जिससे शरीर की सभी क्रियाएँ संचालित होती हैं। ये कार्बोहाइड्रेट मुख्य रूप से गेहूँ, चावल, ज्वार, मक्का, बाजरा, शक्कर, गुड़, कोदों, कुटकी तथा फलों से प्राप्त होता है। जिन्हें जैन अहिंसक आहार संहिता भी स्वीकार करते हैं।

2. **प्रोटीन**- प्रोटीन शरीर की प्रमुख आवश्यकता है। यह सोयाबीन, चना, राजमा, उड़द, लोबिया, मूँग, मसूर, मोठ, अरहर, बादाम, काजू, पनीर, खोया तथा दूध में पाया जाता है। शाकाहारी दलहनों में माँस या अण्डों की अपेक्षा प्रोटीन की मात्रा का प्रतिशत अधिक होता है।

3. **फेट या चर्बी**- शरीर में शक्ति एवं भविष्य के लिए शक्ति का एकत्रीकरण चर्बी या फेट से होता है। यह चर्बी घी, मक्खन, दूध आदि से प्राप्त होता है। घी, मक्खन, दूध आदि से प्राप्त चर्बी बाल्यावस्था, यौवन एवं मातृत्व के लिए उचित मात्रा में लाभदायक है। वहीं इसकी अतिमात्रा प्रौढ़ एवं वृद्धावस्था में संतृप्तता के कारण हानिप्रद होने लगती है। परन्तु वर्तमान में शाकाहारी द्रव्यों से प्राप्त खाद्य चर्बियों एवं घी रूप में उपलब्ध है। जिसका उचित प्रतिशत में उपयोग करने पर प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था में भी रोगों की संभावना को कम कर देता है।

4. **खनिज तत्त्व**- इस शरीर की उपापचय क्रिया में सूक्ष्मरूप से लगभग 30 से भी अधिक धातुएँ सक्रिय भूमिका का काम करती हैं। इनमें लोहा, कैल्शियम, फास्फोरस तथा ताम्रादि मुख्य धातुएँ हैं। इनकी पूर्ति के लिए भी शुद्ध आहार की आवश्यकता है।

5. **लोह धातु**- शरीर में हीमोग्लोबिन के द्वारा रक्त संस्थान में लोह धातु अधिक गुणकारी है। शरीर के लीवर में मुख्य रूप से इसका संचय होता है। रक्त कणों के निर्माण में भी इसका सबसे अधिक भाग होता है। शरीर में लोह सामग्री की पूर्ति के लिए सभी पत्तीदार साग-

सब्जियाँ, फल, गेहूँ, चावल, ज्वार, मक्का, बाजरा, रसभरी, टमाटर, किशमिश, मुनक्का, अखरोट, आदि पदार्थों से होती है। वैज्ञानिकों की मान्यता है कि इन हरी सब्जियों में ताजे फल से शरीर में 90 प्रतिशत तक रक्त की पूर्ति होती है।

6. खाद्य जन्तु- मानव के शरीर में आंतों में पचे हुए खाद्य पदार्थ को आगे बढ़ाने के लिए खाद्य में तंतुओं का होना आवश्यक है। इनके सद्भाव से शरीर की पाचन क्रिया सुचारू रूप से चलती है।

7. विटामिन- शरीर में स्फूर्ति पहुँचाने में विटामिन महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। यह सामान्य गतिविधियाँ एवं विपरीत परिस्थितियों में शरीर के संरक्षण के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहते हैं। ये शरीर में बहुत कम मात्रा में रहते हैं। जिनमें विटामिन ए, डी, बी, सी, ई प्रमुख हैं।²⁷

जैनदर्शन के इन दिशा निर्देशों को जानकर आश्चर्य होता है। अत्यंत प्राचीनकाल में जबकि आधुनिक उपकरणों का अभाव था। तब किस प्रकार जैन विद्वानों और संतों ने इस सूक्ष्म जीव विज्ञान के नियम प्रतिपादन किये होंगे ? वास्तव में यह उनके दिव्य ज्ञान चक्षुओं के अनुसंधान का ही प्रतिफल है।

जापानी आयुर्विद ताकेशी हिरायामा ने 1 लाख 22 हजार लोगों पर 16 वर्ष तक निरंतर खोज के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पीले तथा हरे रंग के आहार पालक, पपीता आदि क्षारीय जैविक आहारों से एण्टी ऑक्सीडेन्ट, बीटा कैरोटिन एवं ऑक्सेफेरॉल, ओमेगा-3, पोली अनसेचुरेटेड वसा तथा रफेज की अधिकता होने से व्यक्ति दीर्घजीवी होता है तथा कैंसर, अल्सर, हृदय रोग जैसे घातक रोगों से मुक्त रहता है, मानसिक अवसाद, तनाव से दूर रहता है जो इन रोगों की जड़ हैं। फलों का एक प्रधान गुण यह है कि सभी फल क्षारधर्मी होते हैं। अम्लधर्मी खाद्य ग्रहण करने और अन्यान्य कारणों से देह के भीतर जो अम्ल-विष उत्पन्न होता है, फलों का क्षारधर्मी रस उसे नष्ट करता है।²⁸

आहार के प्रकार

प्रत्येक प्राणी अपने शरीर के योग्य आहार ग्रहण करता है। इस कारण आहार को तीन भागों में विभक्त किया गया है। सात्विक, तामसिक, राजसिक आहार।⁹

1. सात्विक आहार

सात्विक आहार शाकाहारी प्राणियों का मूल आहार है। इसके बिना वह जीवित नहीं रह सकता। सात्विक आहार जहाँ प्राणियों की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है, वही उसके मस्तिष्क में सद्विचारों का संचार करता है तथा मानसिक व्यग्रता को दूर करता है। जैन आहार विशेषतया सात्विक भोजन के लिए प्रेरित करता है। जैन ऋषियों का कथन है। जैसा अन्न वैसा मन अर्थात् मनुष्य जैसा भोजन करता है उसके अनुकूल ही मन पर प्रभाव पड़ता है। सात्विक भोजन अन्न पर आधारित है जैसे- गेहूँ, जौ, चना, मक्का, बाजरा, चावल, मूँग, मोठ सब तरह की दालें। ताजा फल, हरी सब्जियाँ, घी, तेल का सेवन भी सात्विक आहार का हिस्सा है।

सात्विक आहार दीर्घ आयु देने वाला और विवेक, शारीरिक बल, आरोग्य, मन की शांति, परस्पर सामंजस्य, प्रेम-प्रीति बढ़ाने वाला होता है। इस आहार में एन्टी ऑक्सीजन का गुण होता है, जो शरीर में कैंसर की रोकथाम करता है। वृद्धावस्था में दिमागी निर्बलता से होने वाली एलजीमरस बीमारी से बचाने में यह सहयोगी होता है।

2. राजसिक आहार

राजसिक आहार शरीर में पेप्टिक अल्सर, आंतों का कैंसर, अपचन आदि बीमारियाँ पैदा करता है, अतः जैन मुनि इस आहार को लेने से मना करते हैं। इस आहार में कड़वे, खट्टे, लवण युक्त, गरिष्ठ

भोजन, तले, भुने व्यंजन, ये सब राजसिक भोजन में आते हैं, जो खाने में अच्छे लगते हैं पर इस आहार में पौष्टिक तत्वों का अभाव रहता है।

3. तामसिक आहार

तामसिक आहार के लिए भी जैन ग्रंथों में निषेध किया गया है। तामसिक आहार में चटपटा भोजन, बासी, जूठा, माँस, मच्छी, अण्डा, मदिरा आदि पदार्थ आते हैं। इन पदार्थों के उपयोग से मानव हिंसक, झगडालू, क्रोधित, परस्पर जलन की भावनाओं से पीड़ित रहता है। वैज्ञानिक खोजों से पता चलता है कि जानवर को जब काटा जाता है तो उसके मन के भाव जैसे डर, लालच, हिंसक प्रवृत्ति कटे हुए माँस में कैमिकल्स के द्वारा चले जाते हैं और खाने वाले व्यक्ति पर यह कैमिकल्स इसी तरह का प्रभाव छोड़ते हैं। तामसिक भोजन से गैस के रोग, अपन्डीसाइटिस, गस्ट्रोएन्ट्राइटिस आदि रोग पैदा होने का डर रहता है। रेड माँसाहार से 100 से अधिक रोग शरीर को ग्रसित कर सकते हैं। सात्विक, राजसिक और तामसिक आहार में भी चार भेद पाये जाते हैं। ये चार प्रकार खाद्य, लेय, पेय, स्वाद्य हैं।

जैन आहार संहिता में मान्य मर्यादाएँ³⁰

क्र	खाद्य पदार्थ	शीत ऋतु	ग्रीष्म ऋतु	वर्षा ऋतु
1.	कपड़े से छना जल	48 मिनट	48 मिनट	48 मिनट
2.	लौंग इलायची मिश्रित जल	6 घंटे	6 घंटे	6 घंटे
3.	गर्म खौलाया हुआ जल	24 घंटे	24 घंटे	24 घंटे
4.	पिसे मसाले	7 दिन	5 दिन	3 दिन
5.	कुटे मसाले	30 दिन	15 दिन	7 दिन
6.	पिसा नमक	48 मिनट	48 मिनट	48 मिनट

7. पीसकर गरम किया नमक	24 घंटे	24 घंटे	24 घंटे
8. मसाला मिला नमक	6 घंटे	6 घंटे	6 घंटे
9. घी, तेल, गुड़ (स्वाद बिगड़ने पर)	अभक्ष्य	अभक्ष्य	अभक्ष्य
10. कच्चा दूध	48 मिनट	48 मिनट	48 मिनट
11. गरम दूध	24 घंटे	24 घंटे	24 घंटे
12. बूरा, बताशा, मिश्री	30 दिन	15 दिन	7 दिन
13. आटा, मैदा, बेसन, चून, दलिया	7 दिन	5 दिन	3 दिन
14. आचार, मुरब्बा, बड़ी, पापड़,	24 घंटे	24 घंटे	24 घंटे
15. कच्चा भोजन (दाल, कढ़ी, खिचड़ी, चावल साग, रायता)	6 घंटे	6 घंटे	6 घंटे
16. रोटी, हलवा, बड़ा, कचौड़ी जल वाले पदार्थ	12 घंटे	12 घंटे	12 घंटे
17. पूड़ी, पपड़िया, लड्डू, घेवर, मिठाई (कम पानी वाले)	24 घंटे	24 घंटे	24 घंटे
18. बिना पानी वाले पदार्थ मगज, लड्डू आदि	7 दिन	7 दिन	7 दिन
19. दही गरम दूध का	24 घंटे	24 घंटे	24 घंटे
20. छाछ (बिलोते समय पानी डाले तो)	12 घंटे	12 घंटे	12 घंटे
21. छाछ (बाद में पानी डाले तो)	48 मिनट	48 मिनट	48 मिनट

22. छाछ (कच्चे दूध के दही से बनी)	अभक्ष्य	अभक्ष्य	अभक्ष्य
23. छाछ व दही गुड़ मिला	अभक्ष्य	अभक्ष्य	अभक्ष्य
24. दही (बूरा, मिश्री, खारक, दाख, मिला)	48 मिनट	48 मिनट	48 मिनट

इन पदार्थों में वैज्ञानिकों का मत भी शामिल है।

वैज्ञानिकों ने पदार्थों की मर्यादा के विषय में कहा है कि-

1. आटे की मर्यादा वर्षा काल में 3 दिन, गर्मी में 5 दिन और ठंड में 7 दिन है। वर्षाकाल में नमी अधिक होने और तापमान 25.-35. से. होने से एम्परजिलस, म्यूकर, राइजोपस, सेकेरोमाइसिस आदि कवक के जीवाणु आटे को शीघ्र दूषित कर देते हैं। शेष दिनों में प्रभाव कम जाता है, इसलिए मर्यादा बढ़ जाती है।

2. शक्कर, किशमिश या छुहारा आदि मिले हुए दही की मर्यादा मात्र 48 मिनट है, क्योंकि मीठे पदार्थों के मिलने से दही में जीवाणुओं की सक्रियता शीघ्र बढ़ जाती है।

3. खिचड़ी, दाल, सब्जी की मर्यादा 6 घण्टे की है। रोटी, चावल, हलुआ आदि की अवधि 12 घण्टे और पूड़ी, लड्डू, खाजा आदि की मर्यादा 24 घण्टे की है। वैज्ञानिक तथ्य यह है कि पक्की रसोई में जलीय अंश कम होने और चिकनाहट अधिक होने से सुरक्षा कवच बन जाता है जिससे ये पदार्थ जीवाणु के द्वारा शीघ्र दूषित नहीं हो पाते। कच्ची रसोई में जलीय अंश अधिक होने से जीवाणु शीघ्र उत्पन्न होने लगते हैं अतः मर्यादा घट जाती है।

4. घी, तेल, गुड़ आदि की अवधि स्वाद न बिगड़ने तक मानी गई है। स्वाद बिगड़ना जीवाणुओं की सक्रियता का सूचक है।

5. विधिवत् निर्दोष रीति से बनाए गए दही की मर्यादा 24 घंटे की है क्योंकि उसके उपरान्त उसमें अल्कोहलिक फर्मेंटेशन प्रारम्भ हो जाता है जो उसे अखाद्य बना देता है।

6. जल को उबालने पर उसकी मर्यादा 24 घण्टे है। सामान्य रूप से गर्म करने पर 12 घण्टे और मात्र छानने पर 48 मिनट की अवधि तक ही उसे प्रासुक जीवाणु रहित माना है। जल में इश्चिरिचिया कोलाई एवं क्लोस्ट्रिडियम नामक जीवाणु अति मात्रा में पाये जाते हैं जो उक्त अवधि के बाद पुनः सक्रिय हो जाते हैं।¹

भक्ष्याभक्ष्य

प्रकृति के पास देने के लिए सब कुछ है। खाने पीने की सामग्री से लेकर रोजमर्रा की सभी आवश्यकताएँ प्रकृति हमें देती है। हम प्रकृति के एक महत्त्वपूर्ण घटक हैं। इसलिए प्रकृति का उतना ही भाग हमारे लिए है, जितने से हम अपने जीवन यापन के लिए अनिवार्य सामग्री की पूर्ति कर सकें। यदि हम अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाते हैं या चीजों को अनावश्यक संग्रह करके प्रकृति का अतिरिक्त दोहन करते हैं तो अंततः हम स्वयं को ही संकट में डालते हैं।

मोक्षमार्ग में यद्यपि अंतरंग परिणाम प्रधान है, परन्तु उनका निमित्त होने के कारण भोजन में भक्ष्याभक्ष्य का विवेक रखना अत्यन्त आवश्यक है। मद्य, मांस, मधु व नवनीत तो हिंसा, मद व प्रमाद उत्पादक होने के कारण महाविकृतियाँ हैं ही, परन्तु पंच उदुम्बर फल कंदमूल, पत्र व पुष्प जाति की वनस्पतियाँ भी क्षुद्र त्रस जीवों की हिंसा के स्थान अथवा अनंतकायिक होने के कारण अभक्ष्य हैं। इनके अतिरिक्त बासी, रसचलित, स्वास्थ्य बाधक, अमर्यादित, संदिग्ध व अशोधित सभी प्रकार की खाद्य वस्तुएँ अभक्ष्य हैं। दालों के साथ दूध व दही का संयोग होने पर द्विदल संज्ञानता अभक्ष्य हो जाता है। विवेकी जनों के लिए इन सबका त्याग करके शुद्ध अन्न जल आदि का ही ग्रहण करना योग्य है।

अभक्ष्य का स्वरूप

जो पदार्थ खाने योग्य नहीं होते उन्हें अखाद्य या अभक्ष्य कहा जाता है।³² हिंसाजन्य और दोषयुक्त पदार्थ भी अभक्ष्य कहलाते हैं। अभक्ष्य पाँच प्रकार के हैं।³³

1. **त्रसघात कारक**—जिन पदार्थों के सेवन में बहुत त्रस जीवों की हिंसा होती है ऐसे माँस, मदिरा, शहद, बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर, पाकर, कमल की डंडी के समान पोल पदार्थ, घुना अन्न, अमर्यादित वस्तु, मुरब्बा, पुराना अचार, और द्विदल आदि के खाने से त्रसजीवों का घात होता है अतः इन्हें त्रसघात कारक अभक्ष्य कहते हैं।

2. **प्रमाद कारक**—जिन पदार्थों के सेवन से नशा या मादकता उत्पन्न होती है ऐसे शराब, गांजा, भांग, अफीम, चरस, कोकीन, बीड़ी, सिगरेट, गुटका, तम्बाकू, आदि पदार्थ प्रमादकारक अभक्ष्य कहलाते हैं।

3. **बहु स्थावर हिंसाकारक**—जिन पदार्थों के सेवन से फल थोड़ा मिलता है पर जीव हिंसा बहुत होती है ऐसे मूली, गाजर, आलू, मक्खन, फूलगोभी, उदम्बर फल आदि पदार्थ बहुघात स्थावर हिंसाकारक अभक्ष्य कहलाते हैं।

4. **अनिष्ट कारक**—जिन पदार्थों के सेवन से शरीर में वात, पित्त, कफ आदि प्रकुपित हो, रक्त विकार आदि दोष उत्पन्न हों उन्हें अनिष्टकारक अभक्ष्य कहते हैं। जैसे—दमा के रोगी को दही, जुकाम के रोगी को शीतल पेय आदि पदार्थ या विष, मिट्टी आदि पदार्थ।

5. **अनुसेव्य**—जो पदार्थ सज्जन, सात्विक पुरुषों के द्वारा सेवन करने योग्य नहीं माने गये, ऐसे लार, कफ, जूठन, गोमूत्र, स्वमूत्र, शंख, सीप आदि पदार्थ अनुसेव्य नामक अभक्ष्य कहलाते हैं।

इसके अलावा जैनधर्म में खाद्य पदार्थों की भी एक निश्चित

मर्यादा बतायी गई है। उस मर्यादा या समय सीमा के बाद वह पदार्थ अखाद्य हो जाता है। विज्ञान के अनुसार इसका एक ही प्रमुख कारण है कि खाद्य पदार्थ एक निश्चित अवधि के बाद सूक्ष्म जीवों के आक्रमण से दूषित होने लगता है।

जैनशास्त्र के अनुसार दवाओं की तरह खाद्य पदार्थ एक निश्चित अवधि के पश्चात् खराब हो जाते हैं। इन पदार्थों में शक्ति वर्धक गुण नष्ट हो जाते हैं और इनके प्रयोग से अनेक बीमारियों के उत्पन्न होने का डर रहता है।

ऐसा माना गया है कि अष्टमी और चतुर्दशी को हरी सब्जियों का उपयोग नहीं करना चाहिये। मान्यता है कि चन्द्रमा की गति के फलस्वरूप अष्टमी और चतुर्दशी के दिन शरीर में पानी की मात्रा अधिक हो जाती है। हरी सब्जी में भी पानी भरपूर मात्रा में रहता है अतः यह सब्जियाँ खाने से शरीर में पानी की मात्रा अधिक हो जाती है जो दिल और गुर्दों पर हानिकारक प्रभाव डालती है। इसी दृष्टि से जैन वैज्ञानिकों ने कम से कम हफ्ते में एक दिन हरी सब्जी खाने के लिए निषेध किया है।

जमीकंद और विज्ञान

जैनधर्म में मूली, गाजर, शलगम, शकरकंद, हल्दी, अदरक, अंगीठा, लहसुन, प्याज, आलु आदि कंदमूल वनस्पतियाँ अभक्ष्य मानी गयी हैं। कंदमूल आदि वस्तुतः तना या जड़ों के रूपान्तरण हैं, जिनमें पौधे का खाद्य पदार्थ संचित हो जाता है। मूली, गाजर आदि कंदमूल पौधे का संचित खाद्य है। जिसे उखाड़ लेने पर पौधे अपना जीवन चक्र पूर्ण किए बिना ही नष्ट हो जाते हैं। इसतरह अपरिपक्व पौधे को नष्ट करना दोषयुक्त है। इन सब्जियों को कीटाणु नाशक सूर्य की रोशनी नहीं मिलती अतः इनमें कीटाणुओं की संख्या अधिक होती है।

सभी जमीकंद जो कि सीधे मिट्टी से सम्पर्क में रहते हैं अत्यंत

सूक्ष्म जीवों से घिरे रहते हैं। इन जीवों में प्रोटोजोआ, आर्थ्रोपोडा, मौलस्का, शैवाल, फफूंद आदि प्रमुख हैं। यदि जमीकंद को खाने के लिए उखाड़ते हैं तो इन जीवों का नष्ट होना स्वाभाविक है।

भूमि के अंदर नमी और अंधेरा होने से इन सूक्ष्म जीवों की निरन्तर वृद्धि होती है और सक्रियता बनी रही है। जमीकंद खाने से न केवल इन जीवों का नाश होता है, अपितु पर्यावरण संतुलन भी प्रभावित होता है।

आधुनिक युग में खेती के दौरान उपयोग में लाए जाने वाले कीटनाशक रसायनों का सीधा प्रभाव जमीकंद पर ही होता है जो हानिकारक और प्राणघातक हो सकता है।

एक-एक आलू में आठ या दस कलिकाएँ (आईबड्स) होती हैं, जिनसे एक नये पौधे की उत्पत्ति होना संभव है। आलू में होने वाला अत्यधिक स्टार्च जीवाणु की अभिवृद्धि में सहायक है, इसी कारण अन्य जमीकंदों की अपेक्षा आलू नहीं खाने पर विशेष जोर दिया जाता है।

अदरक और हल्दी नामक जमीकंदों में जीवाणु प्रतिरोधक क्षमता होने के कारण इन्हें सुखाकर खाया जाना वर्ज्य नहीं है।

वनस्पति शास्त्र के अनुसार मूंगफली, जमीकंद से पृथक् है। मूंगफली के पुष्प पौधे में जमीन से ऊपर ही लगते हैं, बाद में अविकसित फली जमीन के भीतर ऊपरी भाग में धस जाती है और नमी पाकर तेजी से विकसित होती है। इसे पौधे के परिपक्व होने पर ही तोड़ा जाता है और पौधे को क्षति नहीं पहुँचती। यही वजह है कि मूंगफली को जमीकंद के समान अभक्ष्य नहीं माना गया है।

कुलीन मनुष्य प्याज, लहसुन वगैरह कन्दों का भक्षण नहीं करते हैं।³⁴ कंदमूल में पानी और बीज का संयोग होने से जहाँ एक प्राणी की उत्पत्ति होती है, वहीं अनंतानंत जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। ककड़ी

आदि जिन फलों में सिरा संधि का निश्चय न हो व गन्ना आदि की गांठ हो, उसमें अनंतानंत प्राणियों का निवास रहता है। तोड़ने से जिसका समान भाग हो जाए। जिस प्रकार चाकू से काटते हैं, वैसा एक-सा टुकड़ा हो जाए। अथवा छिन्न-भिन्न हो जाने पर भी जो उग जावे, पैदा हो जाये, ऐसे फल या वृक्ष अनंतकायिक कहलाते हैं। जो मूर्ख सरसों के बराबर भी कंदमूल खाते हैं, वे अनंत जीवों का भक्षण करने के कारण परलोक में अनेक दुर्गतियों में परिभ्रमण करते हैं।³⁵ मनुष्यों को विष मिला भोजन खा लेना अच्छा है, एक प्राणी को मार डालना अच्छा परन्तु अनंत जन्मों तक दुःख देने वाले अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण करना अच्छा नहीं। यही समझ कर श्रावकों को धर्म और व्रतों को शुद्ध रखने के लिये अभक्ष्य फलों का विष्टा के समान दूर से ही त्याग कर देना चाहिए।³⁶

उदुम्बर फल और विज्ञान

जैन आहार संहिता के अनुसार बड़, पीपल, पाकर, ऊमर और कठूमर इन पाँच प्रकार के उदुम्बर फलों को असंख्य कीड़ों का निवास होने से अभक्ष्य माना गया है।³⁷ आधुनिक विज्ञान भी इस बात से सहमत है। वनस्पति विज्ञान के अनुसार उदुम्बर फल वास्तव में फल न होकर फलों का समूह है। इसका पुष्पासन थैलेमस खोखला और प्यालीनुमा होता है। इसी के भीतर सैकड़ों पुष्प समूह रूप में विद्यमान रहते हैं। इसे छद्म संग्रहित फल भी कहते हैं।

बड़, पीपल, पाकर, ऊमर, कठूमर, गूलर, अंजीर आदि उदुम्बरों में परागण पालीनेशन के लिए अलग-अलग किस्म के कीड़े प्रवेश करते हैं। इसी कारण आयुर्वेद शास्त्र में इसे जंतुफल भी कहा गया है। अंजीर नामक उदुम्बर में ब्लॉस्टोफेगा नामक मादा कीट परागण के लिए प्रवेश करता है और भीतर सुरक्षित तथा पोषणयुक्त स्थान पाकर अपने अण्डे देता है। अण्डों से निकलने वाली लार्वा या इल्ली इन्हीं उदुम्बरों से अपना भोजन प्राप्त करती है और बाद में नर या मादा कीट बन जाती है। कुछ

कीट अण्डा या लार्वा के रूप में ही उदुम्बर के भीतर मर जाते हैं। इस तरह उदुम्बर फल कीड़ों का जन्म स्थान और शव गृह दोनों हैं। अतः इसे अभक्ष्य कहना अत्यंत वैज्ञानिक तथ्य है। बहुपुष्पीय फलों में कटहल और शहतूत भी उदुम्बर के समान त्याज्य माने जाने चाहिए। उदुम्बर फल के समान कुछ वस्तु भी अभक्ष्य की कोटि में आते हैं। जैसे-आलू, अदरक, अजानफल, बेरी, गोभी का फूल, झरबेरी, मूली, गाजर, शकरकंद, ओला, बर्फ, पाला, मक्खन, विष, मिट्टी, द्विदल, चलित रस, फटा दूध, बाजारू जलेबी, बाजारू नमक, संखिया, धतूरा, निशि भोजन, बहुबीज फल, माँस, अंडा, शहद, बासा भोजन, बैंगन, जामुन, खिन्नी, हल्दी गीली, केला पत्र, आकपत्र, ग्वार पाठा, तुच्छ फल, पान और वर्षा ऋतु में सब पत्तियाँ, प्याज, लहसुन, शराब, दही बड़ा, दग्ध फल, बिगड़ा दही, गांजा, भांग, चरस, अफीम, कोकीन, तम्बाकू, रात्रि में बने समान, अंग्रेजी दवाइयाँ, घुना अन्न, फफूँदी लगी खाद्य वस्तु, अरबी, महुआ, गौमूत्र अभक्ष्य हैं।³⁸

खाने योग्य शुद्ध फल एवं सब्जी

परमल, लौकी, सेमफली, मटर, मक्का, मिर्च, जौ, हरा बूट, कडू, बाजरा, गेहूँ, मकई, मूंगफली, मोगरी, सींगरा, मोरसिरी, आम, आँवला, इमली, अनायास, अनार, अमरूद, अंगूर, आड़ू, आंचफल, केला, कमलगटा, केंथा, खरबूजा, चीमरा, गन्ना, चीकू, चना पत्ता, नीम की पत्ती, तुलसी की पत्ती, धनिया की पत्ती, पोदीना पत्ती, पालक की भाजी, पोई की भाजी, अजवाइन के पत्ते, कुल्फा के पत्ते, बथुआ की भाजी, मूली की पत्ती, मैथी की भाजी, सेंगरे, ककड़ी बालम, ककड़ी फूट, करेला, कमरक, ग्वारफली, टिंडा, तुरै, तुवरफली, बबूल दतौन, नीम दतौन, नाशपाती, मौसम्मी, नींबू, रसभरी, खिरनी, रामफल, लीची, सेब, संतरा, बादाम, नारियल कच्चा, बेल, कच्ची कैरी, सिंघाड़ा और दवाओं में प्रयोग की जाने वाली पत्तियाँ।

खाद्य वस्तुओं में मिलावट

1. सिंथेटिक दूध- नकली दूध में डिटरजेंट पाउडर, वसा, वनस्पति, नमक, चीनी, मसल्स, ब्लाटिंग पेपर, यूरिया, मिलाया जाता है ऐसा दूध अशुद्ध है।
2. डेरी दूध- डेरी में गाय-भैसों के आक्सीटोसिन का इंजेक्शन लगाकर दूध निकाला जाता है, जो हमारे शरीर के लिए हानिकारक है।
3. काला नमक- नकली काला नमक, चमड़े के टुकड़ों और नमक को पानी में खौलाकर, सुखाकर बनता है।

विकल्प- असली काला नमक, त्रिफला और नमक पानी में मटके में खौलाकर बनाया जाता है तथा चमकदार होता है।

4. साबूदाना- साबूदाना शकरकंदी को सड़ाकर बनाया जाता है।
5. चूना- नकली चूना समुद्री जीवों के शरीर सीपियों से बनता है। असली चूना खदानों से निकलता है। परीक्षण संभव है।
6. वनस्पति घी- चर्बी, मछली का तेल, विटामिन ए और डी, 30 माइक्रो प्रतिग्राम भैंस की आंतों को गलाकर तथा मिलाकर बनाया जाता है।
7. कैप्सूल- कैप्सूल के खोल पशुओं की माँस पेशियों से प्राप्त जिलेटिन नामक पदार्थ से बने होते हैं।

विकल्प -उसी फार्मूले की गोली या अन्य नाम की जिससे औषधि एक सी हो, प्रयोग करें।

8. टूथ पेस्ट या पाउडर - जिलेटिन अर्थात् हड्डी का चूरा, फ्लोराइड, सार्बिटॉल, सोडियम, लारिल, सल्फेट क्लोराइड सभी शरीर के लिए घातक हैं।

विकल्प- देशी मंजन का उपयोग करें।

9. चाँदी सोने का वर्क- चाँदी सोने का वर्क बैल की आँतों में रखकर बनाया जाता है।
10. लिपिस्टिक- व्हेल मछली के खून और सूअर की चर्बी से बनती है।
11. अशुद्ध दवायें- जिन दवाओं में हीमोग्लोबिन, पैक्रियास होते हैं, उनका प्रयोग न करें। डेक्सा आरेंज सीरप, गाय के खून से बनता है। जानवरों की हड्डियों से बनी दवाई प्रयोग न करें।

विकल्प- आयुर्वेदिक दवा का प्रयोग करें।

12. होम्योपैथिक दवायें- पशु हिंसा या शराब के प्रयोग से बनी दवाई का प्रयोग न करें।
13. आइसक्रीम- जुए मारने की दवा, हड्डी का पाउडर, जानवरों के थन, पूंछ, नाक से प्राप्त 6 प्रतिशत चर्बी, रबर, चमड़ा साफ करने वाले नुकसानदायक पदार्थ से बनती हैं।

विकल्प- घर में दूध-शक्कर से बनी आइसक्रीम का उपयोग करें।

14. च्युइंगम- बछड़े के आमाशय, अमारथ, सनसेट येलो जैसे रंगों को मिलाकर बनाते हैं।
15. चाकलेट-गाय का माँस, बीफ जिलेटिन, लाख, निकल, अमारथ और सनसेट येलो से बनते हैं।
16. ब्रेड, बिस्कुट तथा केक- अंडे, हड्डियों का चूर्ण, चर्बी, व्हे पाउडर, बकरे या बछड़े की आंत का अर्क, इमल्सीफायर मिलाया जाता है।
17. पान मसाला- छिपकली की पूंछ मादकता उत्पन्न करने के लिए डाली जाती है। मुटाजेन घातक तत्व पाया जाता है।

विकल्प- सौंफ, लौंग, इलायची का प्रयोग करें।

18. सिंथेटिक कत्था- जानवरों के शुष्क खून, जूतों के पालिश, मुलतानी

मिट्टी, आरारोट, लाल रंग मिलाकर बनाते हैं।

19. सेक्रीन- डल्शीन नामक पदार्थ से बनता है जो शरीर के लिए घातक होता है।

विकल्प- शक्कर का प्रयोग करें।

20. माउथवास- यह कैल्शियम, ग्लिसरो, फास्फेट, मांसाहारी तत्वों से बनाया जाता है।

विकल्प- त्रिफला चूर्ण के गरम पानी का उपयोग करना चाहिए।

21. शुद्ध घी- पाम आयल, एसेंस, मूँगफली का आटा, आलू, ब्यूटरिक एसिड से बनाया जाता है। कानूनन शुद्ध घी के पैक पर मिल्क एवं मिल्क प्रोडक्ट लिखा होना चाहिए।

विकल्प- शुद्ध घी दूध का घर में बनाकर इस्तेमाल करें।

22. मिनरल वाटर- पानी में कीटनाशक अधिक मात्रा में होता है। जाँच के दौरान आर्सेनिक, एल्युमिनियम जैसी 8 अशुद्धियाँ पाई जाती हैं।

विकल्प - पानी छानकर पीयें।

23. कोल्ड ड्रिंक- खुशबूदार मीठा पानी है, जिसमें फास्फोरिक एसिड, टार्टरिक एसिड, अधिक चीनी, सोडियम बेनोएट, सल्फर डाय आक्साइड, एस्परटेम, सेक्रीन, कार्बनडायऑक्साइड, टेट्राजीन, कार्मेइजीन, मेलाथियान, क्लोरपाइरीफास, डी० डी० टी०, गेमेक्सीन मिलाया जाता है। ये सब शरीर के लिए घातक हैं।

विकल्प- दूध लस्सी का प्रयोग करें।

24. जंक फूड- थकान और कमजोरी आती है।

विकल्प- इनकी जगह घर का नाश्ता प्रयोग करें।³⁹

जैनधर्म में आत्म शुचिता के साथ-साथ अपने शरीर, घर, परिवार और आसपास के समूचे वातावरण की शुचिता को भी विशेष महत्त्व दिया गया है। इसलिए खाने योग्य पदार्थों और नहीं खाने योग्य पदार्थों का

अत्यंत संतुलित, साफ-सुधरा, अहिंसक और वैज्ञानिक स्वरूप जैन आहार संहिता में मौजूद है। यदि श्रावक जैन आहार संहिता के अनुसार अपने भोजन को ग्रहण करता है तो वह पाप से तो बचता ही है अपितु वैज्ञानिक कारणों से उसका स्वास्थ्य भी सुरक्षित रहता है।

आहार शुद्धि

प्राचीन काल से ऋषि मुनियों ने आहार के विषय में जहाँ स्वयं को संयमित रख कर आहार ग्रहण करने को बल दिया है वहीं समूचे प्राणियों को आहार के विषय में ज्ञान करा कर जीव जाति पर उपकार किया है। जैन मुनियों की आहार चर्या तो विश्व के समूचे संतों की आहार चर्या में श्रेष्ठ आहार चर्या कही जाती है। जैन संतों ने भोजन की शुद्धता के लिए श्रावकों को यथोचित निर्देश दिया है। श्रावक इस प्रकार के आहार का उपयोग करें जिससे स्वास्थ्य व धर्म दोनों सुरक्षित रहें। वैसे तो जैन आहार संहिता में भक्ष्याभक्ष्य का विवेक तो रखा गया है परन्तु आहार शुद्धि में वस्तु भक्ष्य होने के बाद भी किस प्रकार से उपयोग में लेना चाहिए। इसका भी विचार किया जाता है। आचार्य उमास्वामी जी ने अहिंसा व्रत की भावनाओं का वर्णन करते हुए कहा है कि ऐसा भोजन शुद्ध है जो भक्ष्य सूर्यप्रकाश में बनाया गया हो तथा सूर्य प्रकाश में ही ग्रहण किया गया हो। इसे आलोकित पान भोजन के नाम से ग्रहण किया गया है।⁴⁰ इसके अतिरिक्त ऐसे आहार को ग्रहण करने के लिए भी मना किया है जो अधिक हिंसा करके अथवा चोरी करके लाया गया हो क्योंकि ऐसा आहार मन को विकृत करता है तथा मन चोरी आदि पाप करने के लिए भाव उत्पन्न करता है।

आहार में आयुर्वेदाचार्यों ने किस महिने किस वस्तु का सेवन नहीं करना चाहिए इसके लिए निर्देश दिया है कि-

चैते गुड़ वैशाखे तेल, जेठे राई, आषाढे बेल,
सावन निब्बू, भादो मही, क्वार करेला, कार्तिक दही।

अगहन जीरा, पूसे धना, माघ मसूर, फागुन चना,
जो नर इन बारह को खाय, बिना निमंत्रण स्वर्ग जाय ॥⁴¹

जो व्यक्ति इन भक्ष्य पदार्थों को इन महिनों में सेवन करता है तो वह अस्वस्थ हो जाता है तथा इनका इन महिनों में सेवन नहीं करने वाले के घर वैद्य कभी भी नहीं आता।

आचार्यों के द्वारा जीवों को भक्ष्य पदार्थों में भी मर्यादा काल करने के निर्देश के बाद भी हमारे घरों में शाकाहारी अभक्ष्य वस्तुओं का आना प्रारंभ हो गया है। जिसे हम शाकाहारी वस्तुओं में गिनकर सेवन कर लेते हैं परन्तु वह वस्तु वस्तुतः नहीं खाने योग्य है।

आचार्य उमास्वामी जी ने पके हुए आहार में सावधानी बरतने का निर्देश देते हुए कहा है कि-**सचित्तसंबंधं संमिश्राभिषव दुःपक्वाहारः**⁴² अर्थात् जीवों से युक्त शाकाहारी पदार्थ, सचित्त संबंधित भोजन, सचित्त जीवों से मिश्रित भोजन, प्रमादवर्धक भोजन तथा ठीक रीति से नहीं पके हुए अथवा दुबारा पकाये गये भोजन को व्रतियों को ग्रहण नहीं करना चाहिए। सचित्त कमल आदि के पत्ते पर रखा गया भोजन, सचित्त पत्ते से ढके गये भोजन को ग्रहण करना निषिद्ध है।

आहार सम्बन्धी निर्देश

1. कुर्सी टेबल पर बैठकर नहीं खाना।

कुर्सी टेबल में बैठकर खाने तथा खड़े-खड़े खाने वाले का शरीर अस्थिर रहता है। उसके पैर चलते रहते हैं। जिसका जितना अधिक शरीर चलायमान होता है, उसका मन भी उतना अधिक चंचल होता है। जब मन, काय की चंचलता को नहीं रोक सकते तो भोजन से मिलने वाले प्रोटीन व्यर्थ में चले जाते हैं। जिससे भोजन से शक्ति नहीं मिल पाती।

2. पद्मासन से बैठकर भोजन करना।

पद्मासन से जमीन पर बैठकर भोजन करने से रक्त का संचार पेट और दिमाग में ज्यादा होता है। जिससे भोजन पचता है और बुद्धि बढ़ती है।

3. कुत्ते आदि जानवरों का झूठा अथवा उनके साथ बैठकर भोजन नहीं करना।

कुत्ते आदि जानवरों के पास में बैठकर भोजन करने से रोग आदि उत्पन्न हो जाते हैं। डॉक्टरों ने यह सिद्ध कर दिया है कि साधारण कुत्ते के काटने से भी रेबीज नामक रोग हो जाता है। जिसकी अधिकता से मृत्यु तक हो जाती है। इसी कारण कहा है कि जानवरों में कुछ ऐसे रोग होते हैं। जिनका ध्यान मानवों को नहीं होता। इन रोगों से बचने के लिए उनके पास बैठकर भोजन करने का निषेध किया है। वर्तमान समय में मानवों के साथ बैठकर खाने वालों के साथ कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो कुत्तों को पालते हैं। साथ ही उनको गोद में बैठाकर भोजन भी कराते हैं। मानवों में प्रेम की अपेक्षा कुत्तों में प्रेम बाँटने का प्रचलन बढ़ता जा रहा है। जिससे रोगों की अधिकता भी बढ़ती जा रही है। इन रोगों से बचने का उपाय जानवरों से प्रेम तो करो परन्तु इनके साथ भोजन आदि न करें।

4. टूटे बर्तन में नहीं खाना।

टूटे हुए बर्तन में भोजन नहीं करना चाहिए पुरानी सभ्यता में टूटे हुए बर्तन अशुभ तथा दरिद्रता का प्रतीक माने जाते थे। इससे भोजन के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न होता है, जो भोजन के लिए लाभदायक नहीं होता है।

5. खाते वक्त मुख से चप-चप की आवाज नहीं करना।

भोजन करते समय मुख से चप-चप की आवाज आना भोजन को असभ्य तरीके से करना है। इससे भोजन में साथ में बैठे लोगों को भोजन में रूचि नहीं होती। वे हमारे साथ भोजन करने से कतराते हैं।

6. खाते वक्त मौन से खाना।

भोजन करते समय मौन रहना भोजन करने का उत्कृष्ट तरीका

है। इससे खाने में प्राप्त शक्ति का बचाव होता है तथा व्यर्थ की बातों से बचा जा सकता है। भोजन के प्रति गृद्धता का भाव प्रकट नहीं होता तथा भोजन माँगने की आदत से बच सकते हैं। वैज्ञानिक कहते हैं कि भोजन करते समय बातें करने से मुख में रखे हुए भोजन को अच्छी तरह से चबा नहीं सकते जिससे पाचन क्रिया में बरीक भोजन के कण न पहुँच कर मोटे-मोटे कण पहुँचते हैं और पाचन क्रिया सम्यक् प्रकार से नहीं होने के कारण भोजन का पूरा रस नहीं बन पाता और वह भोजन मल द्वार से अवशिष्ट होकर निकल जाता है। जबकि मौन रहकर भोजन करने से वैज्ञानिकों के द्वारा बताई गई पाचन विधि में भोजन को पूर्ण रूप से रसीकरण करके ग्रहण करने में मदद मिलती है। जिससे अमाशय में भोजन जाने के पश्चात् शीघ्रता से पाचन हो जाता है।

7. जल्दी-जल्दी नहीं खाना।

भोजन के समय बातें करने से या जल्दी-जल्दी में भोजन करने से भी पाचन क्रिया में प्रभाव पड़ता है जिससे पेट संबंधी रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

8. जूते चप्पल पहनकर भोजन नहीं करना।

प्राचीन संस्कृति में भोजन को अन्न देवता मानते थे। और उसे भगवान के पश्चात् पवित्रता का स्थान देते थे। जब अन्न को देवता का आदर देते हैं तो अन्न को जूते चप्पल पहन कर क्यों खाते हैं। वर्तमान समय में लोगों के द्वारा भोजन को जूते चप्पल पहन ग्रहण करने का प्रचलन चल गया है इस कारण मन की पवित्रता ने जूते चप्पल का स्थान ग्रहण कर लिया है। आज बात-बात में जूते चप्पल की बातें होने लगती हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार जूते चप्पल पहन कर भोजन करने वाले लोगों को बैक्टेरिया के द्वारा होने वाले रोग शीघ्र होते हैं। क्योंकि जूते चप्पल पर मार्ग से आते हुए गंदे स्थान से भी आना पड़ता है। जिससे हमारे पैरों की

रक्षा तो हो जाती है परन्तु पैरों की रक्षा के बदले बैक्टेरिया का खतरा बढ़ जाता है। जब हम जूते चप्पल पहन कर भोजन करते हैं तो मार्ग में आते समय उनमें बैक्टेरिया चिपक जाते हैं, जो भोजन करते समय हमारे पेट में चले जाते हैं और बीमारियाँ पैदा करते हैं।

9. खुले मैदान आदि में नहीं खाना।

खुले मैदान आदि में भोजन करने से आकाश में भ्रमण कर रहे पक्षियों का मल-मूत्र, प्रदूषित वायु का सीधे ग्रहण होता है। जिससे रोग आदि बढ़ने का डर रहता है। इसी कारण जब जैन साधु का चौका जंगल में लगता है, तो पाल लगा कर चौका बनाया जाता है।

10. गंदे कपड़े पहनकर नहीं खाना।

गंदे कपड़े कीटाणुओं का घर होता है। जितने अधिक कपड़े गंदे होते हैं। उनमें उतने अधिक कीटाणु पाये जाते हैं। इसी कारण अधिक गंदे कपड़े व्यक्तियों में खुजली आदि बीमारियाँ पैदा कर देते हैं। यदि इन वस्त्रों को पहनकर भोजन किया जाए तो जो कीटाणु वस्त्रों में हैं, वह भोजन में भी आ जाएंगे जिससे अधिक बीमारी फैलने का भय रहता है। अतः भोजन ग्रहण करते समय शुद्ध कपड़े पहनना चाहिए।

11. शौचादि के कपड़े पहनकर रसोई में प्रवेश नहीं करना।

प्राचीन काल में जब शौचालय घरों से दूर जंगलों में हुआ करते थे। तब भी प्राचीन बुजुर्ग शौचादि कार्य करते समय वस्त्रों को दूर उतारकर रखते थे। शौच हो जाने के बाद शरीर शुद्ध करके पुनः वस्त्र पहनते थे, परन्तु आधुनिक युग में जहाँ सुविधाएँ बढ़ गई हैं। वही व्यक्ति के विचारों में भी परिवर्तन आ गया। वह हिताहित का विचार छोड़ प्रगति की होड़ में लग गया है। वह शौचादि कार्यों को करते हुए भी वस्त्रों की शुद्धि का ध्यान नहीं रखता। वह उन्हीं वस्त्रों से देवालय तथा भोजनशाला में प्रवेश कर दर्शन एवं भोजन करता है। वैज्ञानिकों का मानना है कि

शौचादि कार्यों में बैक्टेरिया जीवों की उत्पत्ति सबसे अधिक होती है। जो शौच क्रिया करते समय हमारे वस्त्रों में चिपक जाते हैं, जो प्रतिक्षण हमारे खाने आदि शुभ क्रिया करने में शरीर के अंदर प्रवेश कर जाते हैं। जिनसे बीमारियाँ फैलती हैं। इन बीमारियों से बचने के लिए जैनाचार्यों ने पहले शुद्धि का ध्यान रखने के लिए कहा है।

12. छने पानी से हाथ, पैर धोकर भोजन सामग्री को ग्रहण करे।

छने पानी से हाथ, पैर धोने से बैक्टेरिया का हमारे शरीर के अंदर प्रवेश नहीं हो पाता है।

13. भोजन के समय नाक, कान, आँख का मैल साफ नहीं करना।

जैनाचार्यों के अनुसार हमारे शरीर में जितने रोम छिद्र हैं, उतने रोग हैं। ये रोग कीटाणु के कारण होते हैं। यदि हम भोजन के समय अपने हाथ का उपयोग नाक, कान, आँख, नाखून आदि के मैल को साफ करने में करते हैं तो हम भोजन के साथ कीटाणुओं का भी भक्षण करते हैं। अतः कीटाणुओं से बचना चाहते हैं तो इन बातों को ध्यान रखना चाहिए।

14. सोकर उठने पर तुरंत नहीं खाना मुख साफ करके खाना।

वैज्ञानिकों का कथन है कि सोते समय हमारे मुख के अंदर लार बनती है जो स्वयं के लिए भी हानिकारक होती है। यह लार सोते समय रसायन के स्राव से बनती है। इस लार को यदि कोई तुच्छ प्राणी खा ले तो वह तुरंत मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा। इसी कारण सोकर उठने के बाद मुख प्रक्षालन का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

15. बिस्तर में बैठकर नहीं खाना।

बिस्तर में बैठकर खाना म्लेच्छ लोगों की परम्परा रही है। आर्यों के लिए शयन कक्ष में व शयनस्थल पर बैठकर भोजन नहीं करने का निर्देश दिया है। शयनकक्ष में सोने वाले के विचारों की वर्गणाओं का प्रसार रहता है। यदि वह शयनावस्था में दुःस्वप्न देखता है या कामक्रीड़ा

करता है तो उस शयन कक्ष का वातावरण वैसा हो जाता है तथा वहाँ पर बैठकर भोजन करने वालों में वही वातावरण प्राप्त होता है, जिससे हमारे भोजन के साथ उस वातावरण की वर्गणाएँ शरीर के अंदर चली जाती हैं। इस कारण भोजन के प्रभाव से हमारे विचार कामभोग आदि के होते हैं। अतः देश में अधिकतर बलात्कार के प्रसंग इसीप्रकार के लोगों के साथ होते हैं। जिनका भोजन अशुद्ध होता है।

16. खाने की थाली को अपने से ऊँचे स्थान पर रखना।

भोजन की थाली को अपने उच्च स्थान पर रखना चाहिए। इससे भोजन का आदर भी हो जाता है तथा भोजन करते समय शरीर को अधिक नहीं झुकना पड़ता। जिससे शरीर में रस आदि आवश्यक तत्त्व आसानी से पहुँच जाते हैं।

17. रीढ़ की हड्डी सीधी करके भोजन करना।

भोजन करते समय रीढ़ की हड्डी को सीधा रखना चाहिए। यह हड्डी शरीर का प्रमुख अंग है इसके अभाव में व्यक्ति सीधा खड़ा नहीं रह सकता। इस हड्डी के द्वारा शरीर के सभी अवयवों को शक्ति प्राप्त होती है। यदि यह हड्डी सीधी रहती है तो भोजन सीधा सभी अवयवों में पहुँचता है। अतः इस हड्डी का भोजन के समय सीधा होना आवश्यक है।

18. थाली के भोजन को फैलाकर नहीं खाना।

थाली के भोजन को फैलाकर खाना असभ्यता का सूचक माना जाता है तथा पास में बैठे व्यक्ति को यह अच्छा भी नहीं लगता।

19. जला हुआ भोजन नहीं करना।

जला हुआ भोजन स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है, उस भोजन के प्रोटीन आदि लाभदायक तत्त्व आग की अधिकता के कारण समाप्त हो जाते हैं। जिससे शरीर को आवश्यक तत्वों की पूर्ति में बाधा होती है।

20. अधकच्चा भोजन नहीं करना।

जठराग्नि अधकच्चे भोजन को पचाने में देर लगाती है। जिनकी

जठराग्नि कमजोर होती है, उनको पेट संबंधी रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अधकच्चा भोजन अग्नि के द्वारा पूर्णरूप से पका नहीं होता। जिसकारण जठराग्नि में पहुँचने के बाद जठराग्नि को अधिक मेहनत करनी होती है। जिससे वह अपनी पूरी शक्ति को पचाने में लगा देती है। शरीर में शक्ति की कमी हो जाती है। अतः अधकच्चे भोजन से बच कर अपने स्वास्थ्य को अच्छा रखें।

21. भोजनशाला में बैठकर ही भोजन करना।

भोजनशाला में बैठकर भोजन करने से भोजन संबंधी शुद्ध वातावरण की प्राप्ति होती है तथा भोजन करने में मन भी लगता है। बनाने वाले की भावनाओं का ज्ञान भी हो जाता है।

22. भक्ष्य पदार्थों को अशुद्ध स्थान पर बैठकर नहीं खाना।

भक्ष्य पदार्थों को अशुद्ध स्थान पर बैठकर खाने से मन में विकृति तो उत्पन्न होती ही है, अपितु उस स्थान में उत्पन्न हो रहे बैक्टेरिया आदि जीवों का प्रहार भी हमारे स्वास्थ्य पर होता है। जैसे शौचालय के पास, श्मशान भूमि, माँसाहारी होटलों के अंदर अथवा पास में, कसाई खाने के पास में आदि स्थानों पर बैठकर भोजन नहीं करना चाहिए।

23. अभक्ष्य वस्तुओं के संयोग होने पर भोजन का त्याग करना।

अभक्ष्य वस्तुओं के संयोग होने पर या त्रस जीवों के भोजन पर आ जाने पर दया वश भोजन का त्याग कर देना चाहिए। अहिंसा के पालन करने वाले जैन का पहला कर्तव्य जीव दया करना है।

24. नहीं देखने योग्य दृश्यों को देखते हुए नहीं खाना।

वर्तमान समय में टी० वी० का प्रचलन इतना अधिक हो गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को टी० वी० के अभाव में भोजन रूचिकर नहीं लगता। जबकि टी० वी० भोजन के ग्रहण करते समय मन को अशुद्ध करती है। जिस समय हम भोजन का ग्रहण कर रहे होते हैं, उस समय बलात्कार,

लड़ाई, षड्यंत्र, चोरी, हिंसा आदि घटनाओं को देखते हुए भोजन करते हैं तो वह वर्गणाएँ हमारे अंदर भोजन के साथ चली जाती हैं। जिससे पाचन के समय उन वर्गणाओं के कारण मन में विकृति उत्पन्न हो जाती है।

25. दुर्गन्ध युक्त वस्तुओं का सेवन न करें।

दुर्गन्ध युक्त वस्तुओं का अर्थ है-कीटाणुओं से सहित वस्तुएँ। इसप्रकार की वस्तुओं को जैनदर्शन में चलितरस या अमर्यादित वस्तु कहते हैं। जब वस्तु अमर्यादित हो जाती है, तो उसमें कीटाणुओं की उत्पत्ति होने लगती है। जिस कारण से उसमें दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है। ये दुर्गन्ध युक्त वस्तुएँ जहाँ धर्मशास्त्रों के अनुसार ग्रहण करने योग्य नहीं हैं, वहीं यह शरीर के लिए रोग उत्पन्न करने वाली होती हैं।

26. सूर्य की रोशनी में बैठकर भोजन करना चाहिए

सूर्य की रोशनी में बैठकर भोजन करने से सूर्य के द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा की प्राप्ति हो जाती है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य के वैज्ञानिकों ने रोगों से बचाव के लिए सूर्य किरणों का सद्भाव तथा सूर्यकिरण से रोगों के निदान के लिए कहा है कि सूर्यकिरण में किए गए भोजन से पाचनतंत्र संबंधी हृदयतंत्र, अग्राशय, फेफड़ों, त्वचा, हड्डियों, मस्तिष्क, खून, दांत, संबंधी रोगों का निदान होता है। जैसे-कब्जियत, उर्ध्वगैस, आँव, वात, अल्सर, डायरिया, कैंसर, पेनक्रियेटाइटिस कैंसर, हिपेटाइटिस एवं लीवरफेलिया, एसीडिटी, हार्टअटैक, खट्टी डकार, पेट कड़ा होना, सिरदर्द, पैरदर्द, शरीर में थकावट, ऑक्सीजन में कमी, मधुमेह, लो ब्लडप्रेसर, पेट में दाह, खून संचार में कमी, खून की शुद्धता में कमी, सीने में दर्द, सफेद दाग, टी० वी०, जुखाम, चर्मरोग, मोटापा, रिकेट्स, आस्टीयो मेलेसिया, कैल्शियम, फास्फोरस की कमी, कार्बनडाइऑक्साइड की अधिकता, मस्तिष्क का कमजोर होना, पायरिया, आदि रोगों का निदान, सूर्य के प्रकाश में भोजन करने से होते हैं। तथा इनसे विपरीत अंधेरे में भोजन करने से हमारे भोजन में सूर्य किरण संबंधी लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है।

जिससे इन सभी रोगों की उत्पत्ति की संभावना हो जाती है। जैन सिद्धांत में सूर्य किरण में भोजन नहीं करने वाले को रात्रिभोजन करने का पाप लगता है।

27. बाजार के पानी का प्रयोग न करे।

जैनदर्शन ने जो जीवविज्ञान दर्शाया है। उसमें पानी को भी जीव स्वरूप माना गया है। आज का विज्ञान पानी में जीव मानता है, पर पानी को जीव नहीं मानता। जैसे वनस्पति स्वयं जीव स्वरूप है। शाकभाजी संभालकर पकाने से जीवरहित बनती है वैसे ही पानी भी उबालने से जीव रहित बनता है। विज्ञान ने अभी तक वॉटर के तीन विभाग दर्शाये हैं। बेस्ट वॉटर, मीडियम वॉटर और बेड वॉटर।

बेस्ट वॉटर

उबला हुआ गरम पानी बेस्ट वॉटर है। ऐसा गरम पानी पीने से शरीर में कोई रोग नहीं होता, पाचनशक्ति बढ़ती है और शरीर के सभी अवयवों को ऊर्जा शक्ति प्राप्त होती है।

मीडियम वॉटर

जिस पानी को उबालने के बाद ठंडा करके प्रयोग में लेते हैं वह मीडियम वॉटर कहलाता है यह पानी अधिक आरोग्य प्रद नहीं होता।

बेड वॉटर

जिस पानी को उबालते नहीं, अपितु फ्रिज में ठंडा करने के लिए रखते हैं। वह जल बेड वॉटर कहलाता है। यह जल आरोग्य को हानि पहुँचाता है। आयुर्वेद के अनुसार सर्व रोगों का उत्पत्ति स्थान पेट है। संपूर्ण भोजन को पचाने का काम पेट करता है। पेट को खराब करने का काम ठंडा पानी और ठंडे पेय पदार्थ करते हैं। पेट की जटराग्नि कच्ची-पक्की जैसी भी सामग्री हो सभी को प्रबलता से पचा देती है, परन्तु ठंडे पेय

पदार्थ जठराग्नि को मंद कर देते हैं या समाप्त कर देते हैं। जिससे भोजन नहीं पच पाता और पेट दर्द आदि समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इसी कारण पुराकाल में आचार्यों ने स्वयं तो गर्म जल का सेवन किया तथा दूसरों को मर्यादित ठंडा गर्म जल पीने का उपदेश दिया जो विज्ञान की दृष्टि से बेस्ट वॉटर और मीडियम वॉटर की श्रेणी में आता है। इसके विपरीत बाजार में मिल रहे मिनरल वॉटर तथा पेय पदार्थ अशुद्ध और हानि कारक हैं। उनमें स्वास्थ्य को खराब करने वाले कैमिकल डाले जाते हैं। जिनसे वह जल एक से अधिक दिनों तक स्वच्छ दिखता रहे परन्तु इस जल में मिले हुए कैमिकल्स से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं।⁴³

हींग

हींग जैसे तो कीटाणु नाशक तथा स्वास्थ्य वर्धक है। यह हींग अफगानिस्थान से लाई जाती है। यह पेड़ का रस होती है, जो अफगानिस्थान में पाया जाता है। अफगानिस्थान में हींग के तरल पदार्थ को पैक करके भारत में लाया जाता है। इसके लाने की प्रक्रिया में दोष है। हींग को जानवरों के चमड़े की खोल में भर कर लाया जाता है। जो माँस के स्पर्श से अपवित्र हो जाती है। एक प्रकार से और भी हींग का आयात होता है। जिसमें प्लास्टिक की बोरियों में हींग को भर कर लाया जाता है, जो शुद्ध होती है। जो खाने योग्य होती है। ऐसी हींग चमकदार होती है तथा चमड़े की खोल में भर कर लाई जाने वाली हींग खुर्दरी होती है। इसप्रकार हींग के अंतर को जानकर आहार सामग्री में उपयोग ले सकते हैं।

डिब्बा बंद भोजन अथवा रस

आधुनिक और संस्कारी कहलाने वाले समाज में बंद डिब्बों में, फलों का रस और अन्य पदार्थों की प्रथा जोर शोर से बढ़ रही हैं। फैशन के नाम से प्रचलित ये पदार्थ रंगीन और आकर्षक तो होते हैं परन्तु ये हमारी तंदुरुस्ती के लिए नुकसान कारक है। कारण बंद डिब्बों के रसों

के पेय पदार्थों में बेजाइक एसिड होता है। जिसके थोड़े भी सीधे स्पर्श से आँख, आंतड़िया और चमड़ी पर छाले पड़ जाते हैं। बंद डिब्बों के फलों के रस में एक दूसरा जहरीला पदार्थ जो एसिड का भाग होता है। जिसे सोडियम बेजाइक कहते हैं। यह पदार्थ इतना जहरीला होता है कि कोई कुत्ता उसकी दो ग्राम मात्रा को सीधे ग्रहण कर ले तो तुरन्त मर जावे। उन रसायनों का प्रयोग रस और पदार्थ को ताजा रखने के लिये तथा खराब होने से बचाने के लिए किया जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि विदेशी बाजारों में ये वर्षों तक नहीं बिकते तो ऐसे दूध के पाउडर, फलों के रस के डिब्बे गरीब देशों को भेंट के रूप में देते हैं, वास्तव में यह जहर का पार्सल है। बड़े भाग के बंद डिब्बों के फलों के रस में कन्फेकशनरी, मार्जरीन जैसे एसिड का मिश्रण करने में आता है। उन रसायनों में भी मुख्यतः मॅग्नेशियम फ्लोराइड, एलम तथा कैल्शियम साइट्रेड का मिश्रण करने में आता है, जो स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक होते हैं। जो लोग इन मिश्रण वाले डिब्बों के रसों का, खाद्य पदार्थों का सेवन अधिकता से करते हैं उनके आंतड़ियों में घाव पड़ जाते हैं तथा किडनी में भी नुकसान होता है, मसूढ़ों में सूजन आ जाती है। बंद डिब्बों में हरे मटर को हरा रखने के लिए मॅग्नेशियम फ्लोराइड का मिश्रण किया जाता है। बंद डिब्बों में मक्के के दानों को ताजा रखने के लिए सल्फर डायऑक्साइड जैसे जहरीले रसायन का उपयोग करते हैं। एरीथ्रोसिन नामक रसायन फलों के कॉकटेल तैयार करने में उपयोग में आता है। ये जहरीले रसायन किडनी के लिए अत्यधिक हानिकारक हैं।⁴⁴

अस्वस्थ्य होने पर परहेज वस्तु का सेवन।

पूर्व पाप कर्मोदय से प्राणी अस्वस्थ्य हो जाता है। जिसके सुधार के लिए पुण्य की आवश्यकता होती है। फिर भी प्राणी वैद्य आदि से बहिरंग उपचार कराता है। वैद्य उस व्यक्ति को दवा के साथ जिस वस्तु के सेवन से वह अस्वस्थ्य हुआ है या जिसप्रकार की वस्तुओं के सेवन

से उसके शरीर के अंदर कीटाणु उत्पन्न हो गये हैं। उनके नाश के लिए दवा के सेवन की सलाह देते हैं। रोग आगे तक न फैले, इसकारण उस वस्तु का परहेज कराते हैं। व्यक्ति यदि उस वस्तु का परहेज नहीं करता है, तो उसका रोग शीघ्रता से बढ़ता ही जाता है। इस प्रकार के भक्षण सामग्री को जैनाचार्यों ने अनुसेव्य अभक्ष्य की कोटि में परिगणित किया है।

रजस्वला महिलाओं से अशुद्ध भोजन

जैन ग्रंथों में रजस्वला युक्त महिलाओं के संयोग से बना भोजन अशुद्ध की कोटि में आता है। महिलाओं में प्रतिमाह 3 से 5 दिन तक उनके योनी स्थान से अशुद्ध रक्त का प्रवाह प्रतिक्षण होता रहता है। जिसकारण वह तत्क्षण रक्त रंचिता कहलाती है। इसीकारण आचार्यों ने उन महिलाओं को उस समय शुभ क्रियाओं को करने का निषेध किया है। वह उस समय मंदिर नहीं जाती, शास्त्रों का स्पर्श नहीं करती, विवाह इत्यादि कार्यों में सहभागी नहीं होती, भोजन संबंधी कार्यों को नहीं करती तथा कामसेवन आदि क्रियाएँ भी नहीं करती, उस समय उनको एकांत में रहकर धर्माराधन करना चाहिए। प्राचीन काल से ही ये उक्तियाँ चरितार्थ हो रही हैं कि अशुद्ध महिलाओं की छाया यदि सूखते हुए पापड़ों पर पड़ती है तो वह पापड़ लाल हो जाते हैं तथा उनकी आवाज से पापड़ों का स्वाद बिगड़ जाता है। पकवान आदि भोज्य वस्तुओं का स्वाद बिगड़ जाता है। यदि अशुद्ध अवस्था में देवपूजादि शुभकार्य करती है तो मंदिर का चमत्कार समाप्त हो जाता है, दोष होने लगते हैं तथा उस स्त्री को गर्भपात का दोष लगता है। रजस्वला स्त्री के स्पर्श से नेत्ररोगी अंधा हो जाता है। गर्भवती पक्षी यदि अशुद्ध महिला के ऊपर से निकल जाये तो उसका गर्भपात हो जाता है। अशुद्ध अवस्था में कामसेवन करने वाली महिला की संतान नहीं होती वह बांझ हो जाती है।⁴⁵ इसलिए आचार्यों ने इससमय ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने का निर्देश दिया है।

जैनाचार्यों एवं वैज्ञानिकों के अनुसार प्रत्येक प्राणी का आभामण्डल उत्सर्जित होता है, जो एक-दूसरे को प्रभावित करता है। अशुद्ध अवस्था में महिलाओं का आभामण्डल रोग उत्पन्न करने वाला तथा अमांगलिक होता है। यदि वे इससमय भोजनशाला में प्रवेश कर आहार सामग्री को तैयार करती हैं तो वह भोजन भी रोगोत्पादक, शक्तिहीन, विचारों में विकृति, कामातुरता आदि दोष उत्पन्न करेगा। जो सद्गृहस्थ के लिए हानिकारक हैं।

चौका शुद्धि

प्राचीन काल से ही भगवत् भक्ति के पश्चात् भोजनशाला को पवित्रता का स्थान दिया गया है। मुनियों के साथ-साथ श्रावकों को भी शुद्ध स्थान पर आहार लेने का निर्देश दिया गया है। इसीकारण श्रावक अशुद्ध स्थान पर भोजनशाला का निर्माण नहीं कराता। जिस भूमि के नीचे हड्डियों का, माँस, मदिरा का स्थान हो वहाँ निवास स्थान बनाने का निषेध किया है¹⁶ तथा भोजनशाला अलग से बनाना है तो वहाँ भी इस प्रकार की अशुद्धि नहीं होनी चाहिए। भूमि शोधन के बाद भूमि का वह हिस्सा जहाँ अग्नि का वास हो, उस हिस्से में भोजनशाला का निर्माण करना चाहिए। उस हिस्से को जैनाचार्यों ने आग्नेय कोण कहा है। भोजनशाला के पास में शौचालय एवं लघुशंका का स्थान नहीं होना चाहिए। भोजनशाला उस शुद्ध स्थान में बनाना चाहिए जिसमें माँस, मद्य, मधु आदि का सेवन पूर्वकाल में भी न हुआ हो, कसाई खाना न हो अथवा पूर्व का बंधीगृह आदि भी न हो। ऐसे स्थान पर भोजनशाला का निर्माण उपर्युक्त होता है। यदि इन दोषों से युक्त भोजनशाला होती है तो उस भोजनशाला में बना भोजन विषकारी, रोगवर्धक, शोकवर्धक तथा कलहकारी होता है। जिन व्यक्तियों के घरों में भोजनशाला का स्थान पवित्र होता है। उनके घर में शान्ति होती है, मन स्थिर रहता है, पूज्य पुरुषों की मर्यादा पूर्ववत् सम्माननीय होती है, पूज्यपुरुषों का आधिपत्य उस घर पर सदा बना

रहता है। घर में भोजनशाला अथवा चौके की शुद्धि के लिए परिवार के पुरुषों से अधिक शुद्धता महिलाओं की होती है। महिलाएँ सर्वप्रथम शुद्ध विचार युक्त तथा आनन्दयुक्त हो। जिससे भोजन आनन्ददायक और बल वर्धक हो।

1. महिलाओं को शिल्क की साड़ी, रेशम की साड़ी, लाख की चूड़िया, चमड़े का पर्स आदि पहनकर प्रवेश नहीं करना चाहिए।
2. महिलाएँ शौचादि के वस्त्रों से भोजन न पकावें।
3. अशुद्धि अवस्था में भोजनशाला में प्रवेश न करें।
4. भोजनशाला में कंदमूल आदि अशुद्ध और हिंसा जनक वस्तुओं के बनाने का निषेध करें।
5. भोजनशाला में चप्पल पहनकर भोजन न बनायें।
6. भोजन बनाते समय प्रत्येक वस्तु को नियत स्थान पर रखें।
7. भोजन में छने या गर्म पानी का ही प्रयोग करें।
8. महिलाएँ भोजन से लिप्त हाथ को यहाँ वहाँ न धोएँ।

व्रतोद्योतन श्रावकाचार में कहा है कि जो स्त्रियाँ पकवान बनाने के लिए मिश्री पाक को या शर्करा पाक को या घी, गुड़ से लिप्त हाथ को घर के भीतर जहाँ कहीं भी धोती हैं, जहाँ पर कि घ्राणेन्द्रिय से आकृष्ट होकर मक्षिका आदि जीव उसे स्पर्श करते हैं और उनका मरण हो जाता है। उस पाप के लिए उस स्त्री को नरक के दुःख सहन करने पड़ते हैं।¹⁷

9. जो प्राणी मक्खन को बिना गरम किये कच्चा खा लेते हैं। उनको बंधन, तारण, मारण, छेदन, भेदन सहन करना पड़ता है। उन्हें कोल्हू आदि यंत्रों में पेलते हैं।¹⁸

निष्कर्ष

जीवन को सुखी बनाने के लिए जीवन में आहार और शयन को व्यवस्थित करने की आवश्यकता है। जिसका भोजन का समय और सोने का समय नियत है। वह अपने सभी कार्यों को व्यवस्थित रूप से संचालित करता है। इसके लिए आहार शुद्धि की आवश्यकता अधिक है।

संदर्भ

1. सूक्ष्मजीवों की विविधता, पृष्ठ-10
2. गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा-183, पृष्ठ- 111
3. गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा-72, पृष्ठ- 53
4. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-2, सूत्र- 32, पृष्ठ-137
5. *Algae*, पृष्ठ-3
6. उत्तराध्ययन उत्तरार्ध, अध्याय-8, श्लोक-94, पृष्ठ-857, भावार्थ
7. सूक्ष्म जैविकी, पृष्ठ-15
8. गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा-92, पृष्ठ- 63
9. सूक्ष्म जैविकी, पृष्ठ-15
10. जैनेन्द्रसिद्धांत कोश, भाग-3, प्रकरण-भक्ष्याभक्ष्य, पृष्ठ-202
11. जैनेन्द्रसिद्धांत कोश, भाग-2, प्र0-जलगालन निर्देश, पृष्ठ-325, प्रसंग-व्रतविधानसंग्रह-श्लोक-30
12. जैनेन्द्रसिद्धांत कोश, भाग-2, प्रकरण-जलगालन निर्देश, पृष्ठ-325
13. सागार धर्माभूत, अध्याय-3, श्लोक-16 , पृष्ठ- 131,
14. सूर्य चिकित्सा ही एकमात्र विकल्प अखंड ज्योति, जुलाई-1993
15. सूर्य चिकित्सा ही एकमात्र विकल्प अखंड ज्योति, जुलाई-1993
16. सूर्य चिकित्सा ही एकमात्र विकल्प अखंड ज्योति, जुलाई-1993
17. सूर्य चिकित्सा ही एकमात्र विकल्प अखंड ज्योति, जुलाई-1993.

18. सूर्य चिकित्सा ही एकमात्र विकल्प अखंड ज्योति, जुलाई-1993
19. सूर्य चिकित्सा ही एकमात्र विकल्प अखंड ज्योति, फरवरी-1989
20. भोजन कब, क्यों, कैसे, पृष्ठ-35
21. वैज्ञानिकों की दृष्टि में उपवास,
22. वैज्ञानिकों की दृष्टि में उपवास,
23. वैज्ञानिकों की दृष्टि में उपवास,
24. सागर धर्माभूत, श्रावकाचार संग्रह, भाग-2, पृष्ठ- 33, श्लोक- 25
25. अमितगति श्रावकाचार, श्रावकाचार संग्रह, भाग-1, पृष्ठ- 308, श्लोक 49
26. प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग, पृष्ठ-10
27. अहिंसकाहार, पृष्ठ-25-27
28. प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग, पृष्ठ-10
29. अहिंसकाहार, पृष्ठ-132
30. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश भाग-3, पृष्ठ-202
31. आस्था और अन्वेषण, पृष्ठ- 54
32. श्रावकाचार संग्रह, भाग-4, प्रस्तावना, पृष्ठ-163
33. रत्नकरण्डक श्रावकाचार, श्लोक-84-86
34. भगवती आराधना, गाथा-1533,1414
35. श्रावकाचार संग्रह, भाग-1, पृष्ठ-335
36. श्रावकाचार संग्रह, भाग-1, पृष्ठ-337
37. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-3, पृष्ठ-203
38. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-3, पृष्ठ-202
39. अहिंसकाहार, पृष्ठ-41
40. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय-7, सूत्र- 4

41. अहिंसकाहार, पृष्ठ-48
42. तत्त्वार्थसूत्र,अध्याय-7, सूत्र- 35
43. रिसर्च ऑफ डाइनिंग टेबल, पृष्ठ-73
44. रिसर्च ऑफ डाइनिंग टेबल, पृष्ठ-29
45. श्रावकाचार संग्रह, भाग-3, पृष्ठ-207
46. वत्थुविद्या, पृष्ठ-20
47. श्रावकाचार संग्रह, भाग-3, पृष्ठ-207
48. श्रावकाचार संग्रह, भाग-3, पृष्ठ-207

अध्याय तृतीय

कर्म सिद्धान्त :

एक वैज्ञानिक विवेचन

कर्म का स्वरूप

विश्व में सभी दर्शन आत्मा तथा कर्म के प्रति श्रद्धावन्त हैं। कर्म की सत्ता को सभी न्यूनाधिक रूप से स्वीकार करते हैं। व्यक्ति जिस प्रकार से कर्म करता है, उसी के अनुरूप वह उसका फल प्राप्त करता है। यह एक आम धारणा है, परन्तु जिस विशिष्टता के साथ जैनदर्शन में कर्म सिद्धांत की चर्चा की गई है, उसप्रकार से अन्य दर्शनों में नहीं है। संसार के सभी मनुष्य दृश्यमान् सप्त आश्चर्यों को आश्चर्य मानते हैं। जो किसी के द्वारा निर्मित हैं, जिन्हें हम स्पर्श कर सकते हैं, परन्तु इनसे भी बड़ा आश्चर्य जैनदर्शन में कर्म सिद्धांत को कह सकते हैं, जो अदृश्यमान् हैं। किसी के द्वारा बनाया नहीं गया फिर भी जीव उसका बंध करता है। उससे सुख-दुःख का अनुभव करता है। सभी जानते व मानते हैं कि जो करेगा उसका फल उसे भोगना पड़ेगा परन्तु जिसका उपभोग वह करता है, उसको कभी देख नहीं सकता। इससे बड़ा आश्चर्य और क्या हो सकता है कि देखे बिना सभी इसका अनुभव कर रहे हैं। जैनदर्शन के अनुसार जीव मन, वचन, काय के द्वारा प्रतिक्षण कुछ न कुछ करता है। वह सब उसकी क्रिया या कर्म है। जबकि अन्य दर्शन मात्र काय से किये गये कार्य को ही कर्म की संज्ञा देते हैं। कर्म के द्वारा ही जीव परतंत्र होता है, संसार में भटकता है। जैनदर्शन कर्म को सूक्ष्म वर्गणाओं के रूप में स्वीकार करता है। जैनदर्शन का कथन है कि वर्गणाएँ 23 प्रकार की होती

हैं। उनमें से एक कार्मण वर्गणा है, जो समस्त लोक में व्याप्त है।¹ जिनके गुणधर्म अलग-अलग होते हैं, परन्तु जैसे जीव अपने आत्म परिणामों में विकृति उत्पन्न करता है, वैसे ही कार्मण वर्गणाएँ कर्म रूप से आत्मा में एकमेक हो जाती हैं अर्थात् चिपक जाती हैं। जबकि अन्यदर्शन कर्म को ईश्वर के द्वारा प्रदत्त मानते हैं। उनके अनुसार ईश्वर जीवों को कर्म तथा कर्मफल दोनों प्रदान करता है। ईश्वर की इच्छा से जीव कर्म करता है। इसकारण से कर्म एक निरकुंश सत्ता के रूप में स्वीकृत है, परन्तु जैनदर्शन कर्म की सत्ता को परिवर्तनीय मानता है। जीव अपने पुरुषार्थ के द्वारा कर्म का परिवर्तन कर सकता है। यह कर्म जीवों के चारों ओर तथा उसके आत्मा में भी कार्मण वर्गणा रूप में विद्यमान रहतो है, परन्तु जीव रागद्वेष परिणाम करके उन अलेप रूप से विद्यमान कार्मण वर्गणाओं को ग्रहण कर उनसे लिप्त हो जाता है इसे कर्म बंध की संज्ञा दी गई है।

कर्म के भेद

सामान्य रूप से ये कार्मण वर्गणाएँ एक होते हुए भी जीव के विभिन्न प्रकार के योग-उपयोग को प्राप्त करके विभिन्न कर्म रूप में परिणमन कर लेती हैं। जैसे-मनुष्य के द्वारा भुक्त भोजन मनुष्य की विभिन्न पाचन क्रियाओं को प्राप्त करके रस, रूधिर, माँस, अस्थि, मज्जा, वीर्य, ओज रूप परिणमन कर लेता है, उसी प्रकार कार्मण वर्गणाएँ भावकर्म तथा द्रव्य कर्म रूप में परिणत हो जाती हैं तथा भाव कर्म के रूप में राग-द्वेष रूप होती है तथा द्रव्य कर्म के रूप में ज्ञानावरणादि रूप में परिणत हो जाती हैं। जैन कर्म सिद्धांत की दृष्टि से कर्म की आठ मूल प्रकृतियाँ हैं, जो प्राणियों को अनुकूल और प्रतिकूल फल प्रदान करती हैं। जो ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय रूप हैं।²

इनमें से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातियाँ हैं, क्योंकि इनसे आत्मा के गुणों का घात होता है। शेष चार

कर्म अघातियाँ हैं, क्योंकि ये आत्मा के किसी गुण का घात नहीं करते, बल्कि आत्मा को एक ऐसा रूप प्रदान करते हैं जो उसका निजी नहीं है, अपितु वैभाविक है। इन आठ कर्मों का भी उत्तर भेद के रूप में विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। उत्तर भेदों में ज्ञानावरणी के पाँच, दर्शनावरणी के नौ, वेदनीय के दो, मोहनीय के अट्ठाइस, आयु के चार, नाम के ब्यालीस, गोत्र के दो और अन्तराय के पाँच भेद हैं।

ज्ञानावरण कर्म

जो ज्ञान गुण को आवृत करता है वह ज्ञानावरण कर्म है, इसकी पाँच उत्तर प्रकृतियाँ हैं। मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण, केवलज्ञानावरण।

दर्शनावरण कर्म

जो पुद्गल स्कन्ध जीव के साथ समवाय संबंध को प्राप्त हैं और दर्शन गुण का प्रतिबंध करने वाला है, वह दर्शनावरण कर्म है। इसके आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने नौ भेद कहे हैं। चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन इन चारों के चार आवरण तथा निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचला, प्रचलाप्रचला और स्त्यानगृद्धि ये पाँच निद्रादिक ऐसे नौ दर्शनावरण के भेद हैं।

वेदनीय कर्म

जो वेदन कराता है या जिसके द्वारा वेदा जाता है, वह वेदनीय कर्म है। वेदनीय कर्म के दो भेद माने गए हैं। सद्देद्य और असद्देद्य।

मोहनीय कर्म

जो मोहित करता है या जिसके द्वारा मोहा जाता है वह मोहनीय कर्म है। मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृति के लिए पूज्यपाद स्वामी ने निर्देश दिया है-

1. दर्शन मोहनीय कर्म
2. चारित्र मोहनीय कर्म

दर्शनमोहनीय कर्म के तीन भेद हैं-

1. सम्यक्त्व प्रकृति मोहनीय कर्म
2. मिथ्यात्व मोहनीय कर्म
3. सम्यग्मिथ्यात्व मोहनीय कर्म

चारित्र मोहनीय कर्म के भी दो भेद हैं -

1. अकषाय वेदनीय कर्म
2. कषाय वेदनीय कर्म

अकषाय वेदनीय कर्म के नौ भेद बताये गए हैं

1. हास्य
2. रति
3. अरति
4. शोक
5. भय
6. जुगुप्सा
7. स्त्रीवेद
8. पुरुषवेद
9. नपुंसकवेद

तथा अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन ये प्रत्येक क्रोध, मान, माया, लोभ के भेद से सोलह कषाय वेदनीय मोहनीय कर्म हैं।

आयु

जिसके द्वारा नारक आदि भव प्राप्त होता है। वह आयु कर्म हैं अथवा जिसके सद्भाव से आत्मा जीवितव्य होता है तथा जिसके अभाव से मृत्यु कही जाती है जीव के भव धारण को ही आयु कहते हैं। नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु और देवायु ये चार भेद आयु कर्म में प्रतिपादित किये हैं।

नामकर्म

जो आत्मा को नमाता है या जिसके द्वारा आत्मा नमता है वह नामकर्म है। अथवा जिससे शरीर आदि की रचना होती है उसे नामकर्म

कहते हैं। नामकर्म की मूल प्रकृतियाँ 42 कहीं हैं तथा उनके उत्तर भेद रूप 93 प्रकृतियाँ हैं।

मूल प्रकृति जैसे- गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बंधन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, विहायोगति, साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर, स्थावर और त्रस, दुर्भग और सुभग, दुःस्वर और सुस्वर, अशुभ और शुभ, बादर और सूक्ष्म, अपर्याप्त और पर्याप्त, अस्थिर और स्थिर, अनादेय और आदेय, अयशःकीर्ति और यशःकीर्ति एवं तीर्थकरत्व ये ब्यालीस प्रकृतियाँ हैं।

गोत्रकर्म

जिसके द्वारा जीव उच्च नीच कहा जाता है वह गोत्रकर्म है। जो दाता और देय आदि का अन्तर करता है अर्थात् बीच में आता है वह गोत्र कर्म है। गोत्रकर्म की दो प्रकृतियाँ हैं उच्चगोत्र और नीचगोत्र। जो लोक पूजित कुलों में जन्म दिलाता है, वह उच्च गोत्र है और जिसके उदय से गर्हित निम्न कुलों में जन्म लेता है वह नीच गोत्र है।

अन्तरायकर्म

दानादि परिणाम के व्याघात के कारण से यह अन्तराय संज्ञा मिली है। अतः विघ्न करना अन्तराय कर्म का कार्य है। जीव के दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य ये पाँच अन्तरायकर्म हैं। जिनके उदय से देने की इच्छा करता हुआ भी नहीं देता है, प्राप्त करने की इच्छा रखता हुआ भी नहीं प्राप्त करता है, भोगने की इच्छा करता हुआ भी नहीं भोग सकता है, उपभोग करने की इच्छा करता हुआ भी उपभोग नहीं ले सकता है और उत्साहित होने की इच्छा रखता हुआ भी उत्साहित नहीं होता है। उदाहरणतः एक बार खाए गए अन्न का रस, रुधिर आदि रूप से परिणमन होता है उसीप्रकार एक आत्म परिणाम के द्वारा ग्रहण किए गए पुद्गल ज्ञानावरण आदि अनेक रूप को प्राप्त होते हैं।

कर्म और पुरुषार्थ

कर्मवाद को जानने वाले प्रत्येक कार्य के लिए कर्म को उत्तरदायी बता देते हैं। ईश्वरवाद को मानने वाले ईश्वर को और नियतिवाद को मानने वाले नियति पर सारा उत्तरदायित्व डाल देते हैं। हम क्या करें? कर्म में ऐसा ही लिखा था। जीवन और जगत् के विकास में पुरुषार्थ और नियति दोनों का योग रहता है। दोनों की अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। नियति को छोड़कर केवल पुरुषार्थ के आधार पर जीवन की समग्रता से व्याख्या नहीं की जा सकती। यह कहा जाता है कि आदमी पुरुषार्थ करना बंद कर देगा। वह मानने लग जाता है कि मैं कुछ कर नहीं सकता। यह एकांगी दृष्टिकोण है, इस मिथ्या धारणा ने अनेक भ्रांतियाँ पैदा की है। इस धारणा ने गरीबी, बीमारी, दुर्व्यवस्था और अज्ञान को बढ़ने में सहारा दिया है। आचार्यों ने कर्मवाद को एकांगी उत्तरदायी मानना मिथ्या कहा है। यद्यपि कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद, का भी महत्त्व कम नहीं हैं, फिर भी ये इतने व्यापक नहीं हैं। जितना कर्मवाद व्यापक है किन्तु यह सही मालूम पड़ता है कि कर्म एक निरंकुश सत्ता नहीं है, कर्म पर भी अंकुश है। कर्मों में परिवर्तन किया जा सकता है। कर्मों में उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण, संक्रमण संभव है। ये प्रक्रियाएँ कर्मों को रूपान्तरण करती हैं परन्तु रूपान्तरण केवल पुरुषार्थ से संभव है।

कर्मों का भौतिकपना

जैनदर्शनापेक्षा अणु पुद्गल का सबसे छोटा रूप माना गया है, परन्तु जैनदर्शन में जिसके एक से अधिक टुकड़े न किये जा सकें, जो न स्वयं किसी के द्वारा बाधित हो और न किसी को बाधित करे वह अणु सूक्ष्म है परन्तु विज्ञान का अणु दूसरे को बाधित भी करता है तथा दूसरे के द्वारा बाधित किया जाता है। विज्ञान में परमाणु को छोटा माना है, जो स्थूल प्रतीत होता है। जैनदर्शन में समान गुण वाले परमाणु पिण्ड मिलकर वर्गणा बनाते हैं। ये वर्गणाएँ पूरे लोक में भरी हुई हैं। इन वर्गणाओं में से

ही कुछ ऐसी होती हैं जो आत्मा के कषाय आदि परिणामों के कारण आत्मा के साथ चिपक जाती हैं, जिन्हें कर्म कहते हैं। अतः कर्म वस्तुतः परमाणु पिण्डों का समूह है। इन्हें हम कार्मिक कण, कार्माणु या कार्मण वर्गणा कह सकते हैं।

बंध को प्राप्त कर्म पुद्गल अणुओं का समूह है, इसकारण कर्म को स्कन्ध कहा गया है। कर्मों को सूक्ष्म स्कन्ध की श्रेणी में रखा गया है क्योंकि अणु नहीं होने के कारण सूक्ष्म नहीं है परन्तु स्वतंत्र कर्म पुद्गल अणु के समान इतने सूक्ष्म होते हैं कि न तो इनको आँखों द्वारा देखा जा सकता है और न ही इनकी उपस्थिति को इन्द्रियों के द्वारा अनुभव किया जा सकता है। इन्हें किसी भी उपकरण के द्वारा भी नहीं पकड़ा जा सकता। ये मोटी से मोटी चट्टान को भी भेद कर पार निकल सकते हैं।

विज्ञान संसार में पाये जाने वाले अचेतन तत्त्व को भौतिक मानता है। जैनदर्शन में भी भौतिक सुख के रूप में सांसारिक सुख को परिगणित किया गया है अर्थात् जैनदर्शन में भौतिक का अर्थ सांसारिक है तथा जो संसार का कारण है वह सांसारिक ही कहा जाएगा। इसकारण से जैनदर्शन में कर्म संसार के कारण कहे गये हैं। संसार से पार होने के लिए कर्मों का नाश करना अत्यंत आवश्यक कहा है। इसीकारण जीव तत्त्व को अचेतन भौतिक तत्त्व से रहित करना ही मोक्ष कहा है अतः जैनदर्शन तथा विज्ञान दोनों की अपेक्षा से कर्मों को भौतिक तत्त्व के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

कार्मिक बल

विज्ञान के अनुसार मानें तो दो स्थूल पिण्डों के मध्य गुरुत्वाकर्षण का बल कार्य करता है लेकिन दो आवेशित कणों के मध्य विद्युत चुम्बकीय बल कार्य करता है। जो इतना अधिक शक्तिशाली होता है कि इन कणों के बीच लगने वाला गुरुत्वाकर्षण का बल उसके सामने नगण्य हो जाता है। परमाणु के नाभिक में प्रोट्रोन, न्यूट्रोन तथा अन्य सूक्ष्म

नाभिकीय कण होते हैं। इन नाभिकीय कणों के मध्य लगने वाला प्रभावकारी बल नाभिकीय बल होता है। नाभिकीय बल के सामने गुरुत्वाकर्षण बल एवं विद्युत चुम्बकीय बल दोनों नगण्य हो जाते हैं। कर्म के कण नाभिकीय कणों से बहुत ही सूक्ष्म होते हैं क्योंकि नाभिकीय कणों को तो रोका जा सकता है लेकिन कार्मिक कणों को रोका नहीं जा सकता है। अतः दो कार्मिक कणों के मध्य लगने वाला बल भी कार्मिक बल के नाम से जाना जाएगा।

आत्मा और कर्म का संबंध

जैनदर्शन में आत्मा को असंख्यात् प्रदेशी कहा गया है। मन, वचन, काय के योग से आत्म प्रदेशों में परिस्पंदन एवं कंपन होता है। जिसप्रकार से तालाब में एक पत्थर डाल देने से उस जल में परिस्पंदन होने लगता है। ठीक उसी प्रकार इन कर्मों के उदय से आत्म प्रदेशों में परिस्पंदन होने लगता है। आत्म प्रदेशों की आकृति में विकृति आ जाती है। ये कर्म वर्गणाएँ आत्म प्रदेशों के साथ बंधन को प्राप्त हो जाती हैं। योग की प्रवृत्ति द्वारा उत्पन्न आत्म प्रदेशों की विकृति तालाब में उत्पन्न जल के परिस्पंदन जैसी होती है, जो कि कुछ ही क्षणों में शांत हो जाती है। चूँकि आत्मा में कलुषता, कषाय या राग-द्वेष का निरन्तर सद्भाव बना रहता है। अतः आत्म प्रदेशों की विकृति स्थायित्व प्राप्त कर लेती है। एक प्रकार से कषाय आत्म प्रदेशों पर दबाव बनाये रखने का कार्य करती है। जिसप्रकार स्पंज के ब्लॉक पर दबाव डालने से उस ब्लॉक के खाली स्थान विकृत हो जाते हैं, उनके आकार बदल जाते हैं, उसी प्रकार कषाय का दबाव पड़ने पर आत्म प्रदेश भी विकृत हो जाते हैं। यदि स्पंज के ब्लॉक से दबाव हट जाए या हटा लिया जाए तो ब्लॉक अपनी मूलस्थिति में आ जाता है। इसीप्रकार जब कषाय पूर्णतः समाप्त हो जाती हैं, तब आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर लेती है। आत्म प्रदेशों की विकृति का परिणाम कषाय की तीव्रता और मंदता पर निर्भर करेगा। यदि कषाय

तीव्र है तो विकृति अधिक समय तक रहेगी और यदि कषाय मंद है तो विकृति भी कम समय के लिए होगी। इन विकृत आत्म प्रदेशों के मध्य में स्थित कर्म वर्गणायें भी कषाय की तीव्रता-मंदता से प्रभावित होती है। कषाय जितनी अधिक तीव्र होगी, कर्म भी इतने ही तीव्र होंगे।

अतः पुद्गल कर्म आत्म प्रदेशों के मध्य कितने समय तक रहेंगे तथा वे किस प्रकार असर दिखायेंगे, यह कषाय पर निर्भर करेगा। यदि कषाय (राग-द्वेष) समाप्त हो जाए तो आत्म प्रदेशों के मध्य स्थित कर्म पुद्गलों का असर भी बहुत कम हो जाता है तथा जैसे ही जीवात्मा में परिस्पंदन समाप्त हो जाता है, कर्म आत्मप्रदेशों से बद्ध नहीं रहते हैं तथा आत्मप्रदेश विकृति, विहीन, बिना परिस्पंदन वाली स्थिति को प्राप्त कर लेते हैं। इसी का नाम मोक्ष है। एक बार जीव जब इस स्थिति को प्राप्त कर लेता है तो बाद में आत्म प्रदेशों में न तो परिस्पंदन होता है और न ही क्लुषता रहती है और न ही आत्म प्रदेशों में कर्मों का बंध होता है।

कार्माण वर्गणायें स्पोर की तरह होती हैं। स्पोर हवा में चारों ओर फैले होते हैं। जब उन्हें उचित वातावरण जैसे-ताप, दाब, नमी व खुराक मिल जाती है, तो वे सजीव हो उठते हैं। उसीप्रकार कार्माण वर्गणाएँ हमारे चारों ओर ठसाठस भरी हुई हैं। जब उन्हें उचित वातावरण अर्थात् योग व कषाय की उपस्थिति में आत्मप्रदेश विकृत हो जाते हैं, तो वे कार्माण वर्गणाएँ द्रव्य कर्म का रूप ले लेती हैं। जितनी अधिक विकृति होती है उसी के अनुरूप यहाँ कार्माण वर्गणाएँ आत्मा से जुड़ जाती हैं।

जिसप्रकार दीवार में तेल लगा हो तो उसमें रजकण चिपक जाते हैं, उसीप्रकार से आत्मा रूपी दीवार में राग-द्वेष रूपी तेल लगने पर कर्मरज रूपी पुद्गल कण चिपक जाते हैं अर्थात् कर्म बंध हो जाता है।

आत्म प्रदेशों की विकृति के कारण कर्मों का आत्मा से चिपके रहना तथा कर्मों की मौजूदगी के कारण आत्म प्रदेशों में विकृति का बने रहना, यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। आत्म प्रदेशों की इस विकृति

को तथा कर्मों को तप और ध्यान के द्वारा दूर किया जा सकता है। विकृति रहित शुद्ध आत्म स्वरूप को प्राप्त किया जा सकता है।

कर्म सिद्धांत और क्लोनिंग

जैनदर्शन में छह द्रव्यों, सात तत्त्वों तथा नौ पदार्थों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन सबमें जीव की मुख्यता है। संसार में जितने भी जीव हैं उनका कल्याण कैसे हो, इस आशय को मुख्य रखकर जीव की विभिन्न अवस्थाओं को अलग-अलग प्रकार से समझाया गया है। जीव की व्याख्या करने के साथ ही जीवों की उत्पत्ति, उनका वर्गीकरण, उनके जन्मस्थान आदि विषयों पर भी समुचित प्रकाश डाला गया है। जीव के रहस्यों को भी अनेक प्रकार से समझाया गया है।

जैसा कि आज हम सभी जानते हैं कि जीव-विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिकों ने बहुत अधिक खोजें कर ली हैं। जैनेटिकल इंजीनियरिंग, क्लोनिंग तथा जैनोम जैसी नई खोजों ने आज आम लोगों को आश्चर्य में डाल दिया है। इन सबके बावजूद भी अभी वैज्ञानिकों के पास अनुत्तरित रहस्यों की कमी नहीं है। वे एक गुत्थी को सुलझाते हैं तो चार नई समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। वैज्ञानिकों की इन खोजों का जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करना अपने आप में बहुत ही महत्वपूर्ण बात है। इस प्रकार के अध्ययनों से जैनदर्शन को विज्ञान की भाषा में समझा जा सकता है। अध्ययन के तीन विषय हैं-

1. अध्ययन के वे विषय जिन पर वैज्ञानिकों ने खोज की है तथा उनका जैनदर्शन में भी वर्णन है।

2. वे विषय जिनकी विज्ञान ने तो खोज की है, लेकिन जैनदर्शन में उनका कोई विशेष उल्लेख नहीं मिलता है।

3. वे विषय जो अभी विज्ञान के क्षेत्र में तो रहस्य बने हुए हैं, लेकिन उनका जैनदर्शन में खुलासा किया गया है।

इन तीनों बिन्दुओं पर प्रकाश डालने पर यह सिद्ध किया जा सकता है कि जैनदर्शन एक वैज्ञानिक धर्म है उसके ऐसे बहुत से सिद्धान्त हैं जो विज्ञान पर आधारित हैं। परन्तु वर्तमान समय में वैज्ञानिकों और दार्शनिकों की बुद्धि से परे होने के कारण उनका प्रतिपादन नहीं हो पा रहा है। इसका कारण वह सिद्धान्त धार्मिक ग्रन्थों में श्रद्धा के विषय बने हुए हैं। यदि जैन वैज्ञानिक जैन सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करके जैन सिद्धान्तों की सत्यता को स्थापित करने का प्रयास करें तो बुद्धि से परे सिद्धान्तों की गुत्थी सुलझ सकती है। तथा व्यवहारिक जीवन में प्राणियों की जैन सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धा बढ़ सकती है तथा शोध के लिये कुछ दिशा निर्देश प्राप्त हो सकते हैं।

इसी क्रम में वैज्ञानिकों ने क्लोनिंग, जैनेटिकल-इंजीनियरिंग आदि विषयों की खोजों से जैनदर्शन के सिद्धान्तों को गलत सिद्ध कर दिया है। लेकिन जब हम इन विषयों की सूक्ष्मता को समझ जाते हैं। तब यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनदर्शन के सिद्धान्तों में कहीं कोई कमी नहीं है। दूसरी ओर कुछ ऐसे विषय भी हैं जो अभी तक विज्ञान के लिए रहस्य बने हुए हैं। जैसे- बुढ़ापा तथा मृत्यु क्यों आती है? हमारे शरीर की कोशिकाएँ शरीर की वृद्धि के साथ-साथ अलग-अलग क्यों होने लगती हैं? पृथ्वी पर जीवन का प्रारम्भ क्यों तथा कैसे हुआ? जीवन कहाँ से आया ? आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जिनका विज्ञान के पास कोई संतोषजनक उत्तर नहीं है। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि इन विषयों पर जैनदर्शन में अत्यधिक प्रकाश डाला गया है तथा जहाँ आवश्यक हुआ है। वहाँ कर्म-सिद्धान्त द्वारा इनकी व्याख्या की गई है।

बैक्टेरिया आदि सूक्ष्म जीवों तथा शरीर में स्थित कोशिकाओं के बारे में विज्ञान ने तो काफी अनुसंधान किया है, लेकिन जैन दार्शनिकों ने भी इनके विषय में विशद् चर्चा की है। इन सूक्ष्म जीवों के लक्षणों तथा जैनदर्शन में वर्णित बादर जीवों के लक्षणों में अद्भुत साम्य दृष्टिगत होता

है। यह जानकर आश्चर्य होता है कि हमारे दार्शनिक बिना किसी सूक्ष्मदर्शी की सहायता के इतना सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत कर पाये। वस्तुतः इन दार्शनिकों ने अपने ज्ञान को इतना अधिक विकसित कर लिया था कि वे सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव के बारे में भी प्रत्यक्ष अनुभव कर पाये। जैनदर्शन में पुद्गलों तथा उनमें स्थित जीवों के बारे में जो वर्णन है। वह शरीर, अंग-तंत्र, अंग-प्रत्यंग, ऊतक तथा कोशिकाओं से बहुत साम्य रखता है। जैनदर्शन में सम्मूर्च्छन जीवों की अपनी एक विशिष्ट अवधारणा है, इसे विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में समझने की जरूरत है। इन सब विषयों पर अभी और अधिक चिन्तन, मनन एवं अनुसंधान की आवश्यकता है। इन्हीं विषयों में क्लोनिंग विषय जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में मानव के लिए बहुचर्चित विषय बना हुआ है। विशेष रूप से जब से वैज्ञानिकों ने डॉली नामक भेड़ का क्लोन तैयार करने का सफल प्रयास किया है, तब से विविध प्रकार की अटकले उत्पन्न हो गई हैं। कुछ वैज्ञानिकों ने यह कहकर कि मानव का क्लोन भी कुछ वर्षों के अन्दर तैयार कर लिया जायेगा, इस विषय की ओर आम लोगों का ध्यान भी आकर्षित कर दिया है। कई वैज्ञानिक तथा अनेक बुद्धिजीवी इस विवाद में उलझे हुए हैं कि क्या मानव का क्लोन भी तैयार किया जा सकता है? क्या मानव-क्लोन तैयार करना एक अनैतिक कृत्य नहीं होगा?

क्लोनिंग ने वैज्ञानिकों तथा बुद्धिजीवियों को तो प्रभावित किया ही है, साथ ही दार्शनिकों एवं धार्मिक नेताओं को भी आश्चर्य में डाल दिया है। जो प्रचलित धार्मिक धारणाएँ हैं। उनके लिए भी क्लोनिंग एक चुनौती भरा विषय बन गया है। इसलिए क्लोनिंग को धार्मिक परिप्रेक्ष्य में परिभाषित करना अपेक्षित हो गया है।

क्लोनिंग क्या है?

किसी जीव विशेष का जैनेटिकल प्रतिरूप पैदा होना क्लोनिंग कहलाता है।³ क्लोन उस जीव विशेष का मात्र नवजात शिशु ही नहीं होता

बल्कि यह उस जीव की एक प्रकार से कार्बन कॉपी होती है। जैनदर्शन के आधार पर जन्म की प्रक्रिया तथा क्लोनिंग के आधार पर जन्म की प्रक्रिया में प्रारम्भिक प्रथम चरण के अतिरिक्त अंतिम चरण तक साम्यता दिखाई देती है। सामान्य जन्म में नर तथा मादा के शुक्राणु अण्डाणु के निषेचन से एक कोशिका तैयार होती है। उस कोशिका के केन्द्रक में नर के 23 गुणसूत्र एवं मादा के 23 गुणसूत्र होते हैं। इसमें जो अधिक शक्तिशाली गुणसूत्र होते हैं। भ्रूण उस नर या मादा का बनता है परन्तु भ्रूण में नर या मादा के 46 गुणसूत्रों का प्रभाव रहता है। जिससे शिशु के अंगोपांग नर और मादा की समानता वाले होते हैं। इस प्रकार कोशिका का निर्माण होता है। फिर उस कोशिका में परिपक्वता आती है और वह भ्रूण का रूप धारण कर लेती है। वह भ्रूण माता के गर्भ में स्थापित किया जाता है। जिससे उस भ्रूण में उस शरीर नामकर्म के योग्य जीव की उत्पत्ति होती है तथा वह जीव माता के गर्भ में पलता है, इस प्रक्रिया को लैंगिक प्रजनन कहते हैं परन्तु क्लोनिंग प्रक्रिया में कोशिका को नूतन तरीके से तैयार नहीं किया जाता अपितु मादा के अण्डाणु की तैयार कोशिका को लेकर उसमें से मादा के केन्द्रक को पृथक् कर जिसका क्लोन तैयार करना है उस नर या मादा की कोशिका का केन्द्रक विस्थापित कर दिया जाता है। जिसमें पूरे 46 गुणसूत्र जिसका क्लोन तैयार करना है उस नर या मादा के होते हैं फिर उसे मादा के गर्भ में स्थापित कर भ्रूण का विकास होने पर जीव का धारण होता है। इसमें कोशिका के केन्द्रक में सारे के सारे गुणसूत्र किसी नर या मादा के होते हैं। जबकि इससे भिन्न सामान्य जन्म में कोशिका के केन्द्रक में नर तथा मादा के आधे-आधे गुणसूत्र होते हैं। जिससे उसमें माता व पिता के अनुवांशिक गुण पाये जाते हैं, परन्तु क्लोन से पैदा हुए जीव में नर तथा मादा के आधे-आधे गुण न होकर किसी एक के पूरे गुण पाये जाते हैं तथा उसके शरीर की संरचना भी किसी एक के समान होती है। जिसके गुणसूत्र कोशिका में विस्थापित किये गये हैं, उन्हें डोनर पेरेन्ट कहते हैं। इस प्रक्रिया में नर तथा मादा के

शरीर गत गुणसूत्रों को तो स्थापित किया गया है परन्तु जीव को स्थापित नहीं किया गया। शरीरगत जीव का हावभाव, स्वभाव डोनर पेरेन्ट से बिल्कुल भिन्न होता है। इसप्रकार पैदा हुए जीव या जीवों का समूह ही क्लोन कहलाता है तथा वह प्रक्रिया जिससे क्लोन तैयार होते हैं, क्लोनिंग कहलाती है।

पशुओं में क्लोनिंग

पशुओं में क्लोनिंग वनस्पतियों (पौधों) में क्लोनिंग के मुकाबले एक क्लिष्ट प्रक्रिया है क्योंकि पौधों की कोशिकाओं का ढांचा अपेक्षाकृत सरल होता है। कई नवजात पौधों की कोशिकाओं में यह गुण होता है कि वे द्विगुणन द्वारा अपनी वंशवृद्धि कर सकते हैं। इस विशेष गुण के कारण ही कई वनस्पतियों में क्लोनिंग की प्रक्रिया बहुत प्राचीन है। कलम द्वारा पौधे लगाना इसी प्रक्रिया के अन्तर्गत आता है। कई एक कोशीय सूक्ष्म जीव भी यही प्रक्रिया अपनाते हैं।

पशुओं के क्लोन तैयार करने की कोशिशें भी काफी समय से होती रही हैं। वैज्ञानिकों ने पचास के दशक में मेढ़कों के क्लोन बनाने के कई प्रयोग किये। सन् 1952 में इस क्षेत्र में आंशिक सफलता भी प्राप्त कर ली, लेकिन पूर्ण सफलता साठ के दशक में ही मिल पाई तथा मेढ़क के तीस क्लोन तैयार कर लिए।

स्तनधारी पशुओं में क्लोनिंग और अधिक जटिल प्रक्रिया है। इसका मुख्य कारण यह है कि इन पशुओं के अण्डाणु बहुत छोटे तथा अधिक भंगुर होते हैं। इस प्रक्रिया में केन्द्रक के प्रत्यारोपण के लिए एक खास सूक्ष्म शल्यचिकित्सा करनी पड़ती है। सत्तर के दशक में खरगोशों तथा चूहों के क्लोन तैयार करने के कई प्रयोग किये गये अन्ततः वैज्ञानिक सफल भी रहे। नब्बे के दशक में भेड़ के क्लोन तैयार करने के प्रयोग किये गये। लेकिन सबसे अधिक तहलका तब मचा जब एडिनवर्ग स्कॉटलेण्ड में स्थित रोसलिन इन्स्टीट्यूट में वैज्ञानिक डॉ॰ इऑन विलसट

ने फरवरी सन् 1996 में डॉली के रूप में एक पूर्ण स्वस्थ भेड़ का क्लोन पैदा कर दिया। इसे महान् उपलब्धि के रूप में लिया गया, क्योंकि इससे मानव क्लोन तैयार करने का रास्ता और अधिक स्पष्ट हो गया।⁴

क्लोन बनाने की तकनीक

क्लोनिंग की चर्चा आगे बढ़ाने से पहले हमें कोशिकाओं तथा स्तनधारियों में सामान्य प्रजनन की प्रक्रिया को थोड़ा समझना होगा। प्रत्येक पशु एवं वनस्पति में अनेक कोशिकाएँ पाई जाती हैं। मनुष्य के शरीर में इन कोशिकाओं की कुल संख्या सौ खरब तक हो सकती है। प्रत्येक कोशिका अपने आप में एक अलग अस्तित्व वाला पूर्ण जीव होता है।⁵ यह वैसे ही एक अलग जीव है जैसे कि आप और हम। कोशिका के केन्द्र में एक नाभिक होता है, जिसे केन्द्रक भी कहते हैं। केन्द्रक के अन्दर उस जीव के गुणसूत्र होते हैं। मनुष्य की कोशिका में गुणसूत्रों की संख्या 46 होती है। इन गुणसूत्रों में ही अनुवांशिकी के सभी गुण मौजूद होते हैं। गुणसूत्रों की रचना डी० एन० ए० तथा आर० एन० ए० नामक रसायनों से निर्मित होती है। इन गुणसूत्रों पर ही जीन्स स्थित होते हैं। कोशिका के केन्द्रक के चारों ओर एक जीवद्रव होता है, जिसे प्रोटोप्लाज्म कहते हैं।

नर के शुक्राणु तथा मादा के अण्डाणु भी परिपक्व कोशिकाएँ होती हैं अर्थात् इनमें द्विगुणन द्वारा वृद्धि नहीं होती है। स्तनधारी पशुओं में लैंगिक प्रजनन होता है। इस प्रक्रिया में शुक्राणु, अण्डाणु को निषेचित कर देता है तथा एक नई कोशिका का निर्माण होता है। इस नई कोशिका में पुनः द्विगुणन करने की क्षमता होती है, जिससे वह भ्रूण में परिवर्तित हो जाता है। इस नई निषेचित या फलित कोशिका के केन्द्रक में गुणसूत्रों की संख्या तो 46 ही होती है लेकिन इसमें आधे गुणसूत्र नर के तथा आधे मादा के होते हैं। इसके विपरीत क्लोनिंग द्वारा उत्पन्न नई कोशिका में सारे के सारे गुणसूत्र किसी एक के ही होते हैं।

स्तनधारी पशुओं के क्लोन पैदा करने की प्रक्रिया कुछ इसप्रकार से है, इसके लिए सर्वप्रथम मादा के एक स्वस्थ अण्डाणु को काम में लिया जाता है। इस अण्डाणु में से विशेष तकनीक द्वारा केन्द्रक को अलग कर दिया जाता है तथा इस केन्द्रक या नाभिक विहीन कोशिका को एक सुरक्षित स्थान पर रख लिया जाता है। अब हमें जिस जीव का क्लोन तैयार करना है। उसकी त्वचा में से कोशिका अलग कर ली जाती है फिर इस कोशिका के केन्द्रक को बड़ी सावधानी पूर्वक अलग कर लिया जाता है। इस केन्द्रक को पूर्व में सुरक्षित रखी केन्द्रक विहीन कोशिका में प्रतिस्थापित कर दिया जाता है। इसप्रकार एक नई कोशिका पैदा हो जाती है। जिसका केन्द्रक डोनर पेरेन्ट की कोशिका का केन्द्रक होता है। इसप्रकार इस नई कोशिका में गुणसूत्र वे ही होते हैं जो डोनर पेरेन्ट में होते हैं। यह नई कोशिका द्विगुणन द्वारा भ्रूण में परिवर्तित हो जाती है। इस भ्रूण को किसी मादा के गर्भाशय में स्थित कर दिया जाता है। जहाँ वह सामान्य रूप से विकसित होने लगता है। इस प्रकार जो नवजात पैदा होता है। उसमें गुणसूत्र वे ही होते हैं, जो डोनर पेरेन्ट के होते हैं अतः इसकी शकल सूरत हू-ब-हू डोनर पेरेन्ट जैसी ही होती है, अर्थात् वह डोनर पेरेन्ट की कॉपी होता है।

इसप्रकार हम जिसकी प्रतिलिपि तैयार करना चाहते हैं, उसका केन्द्रक मादा के अण्डाणु में प्रतिस्थापित करना होगा। यदि हम नर क्लोन तैयार करना चाहते हैं तो उसकी कोशिका का केन्द्रक और मादा का क्लोन चाहते हैं तो मादा की कोशिका का केन्द्रक किसी मादा के अण्डाणु में प्रतिस्थापित करना होगा।

क्लोनिंग से उठे प्रश्न

डॉली के रूप में भेड़ का क्लोन उपरोक्त विधि द्वारा ही पैदा किया गया। लेकिन इस क्लोनिंग के सफल परीक्षण से कई दार्शनिक एवं धार्मिक कठिनाईयाँ सामने आई हैं जिनका स्पष्टीकरण अपेक्षित है।

1. चूँकि क्लोन में आनुवांशिकी के हू-ब-हू वे सारे गुण होते हैं जो कि डोनर पेरेन्ट के हैं, तो क्या क्लोन डोनर का ही एक अंश हैं?

2. क्लोनिंग द्वारा जीव पैदा होने की प्रक्रिया में नर तथा मादा दोनों का होना आवश्यक नहीं रह गया है, अतः बिना नर के भी स्तनधारी पैदा किया जा सकता है। इस जन्म को जैनधर्म में सम्मूर्च्छन, उपपाद या गर्भजन्म क्या माना गया है।

3. क्या प्रयोगशाला में भी मनुष्य पैदा किया जा सकेगा ? तो उसे माता संबंधि आहार कैसे प्राप्त होगा ?

4. जैनधर्मानुसार जीव के शरीर की रचना अंगोपांग नाम कर्म के उदय से होती है, लेकिन क्लोनिंग की प्रक्रिया में शरीर की रचना हम मनचाहे ढंग से बना सकते हैं। ऐसी स्थिति में जैनधर्म में वर्णित नामकर्म की स्थिति क्या होगी?

क्लोनिंग तथा कर्म-सिद्धान्त -

इन प्रश्नों का हल प्राप्त करने के लिए हमें विषय का और अधिक विश्लेषण करना होगा तथा कर्म सिद्धान्त को भी समझना होगा। सर्वप्रथम यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि क्लोन किसी भी जीव का या डोनर पेरेन्ट का अंश नहीं है। क्लोन का अलग अस्तित्व है और डोनर पेरेन्ट का अलग। जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि हमारे शरीर में स्थित प्रत्येक कोशिका भी अपने आप में एक परिपूर्ण शरीरयुक्त स्वतंत्र जीव है तथा हमसे प्रत्येक दृष्टि में भिन्न हैं। उसका वैसा ही अलग अस्तित्व है जैसा कि आपका और हमारा। वह डोनर पेरेन्ट की शरीर की प्रतिकृति है न कि उसके जीव की प्रतिकृति है। अतः जब प्रत्येक कोशिका का अलग अस्तित्व है तो उससे विकसित भ्रूण तथा फिर भ्रूण से विकसित क्लोन डोनर पेरेन्ट का अंश कैसे हो सकता है, अतः क्लोन अपने आप में डोनर पेरेन्ट से बिल्कुल अलग अस्तित्व वाला जीव है

उसका आयुष्य, उसकी भावनायें तथा उसका सुख-दुःख भी अपने डोनर पेरेन्ट से बिलकुल भिन्न होगा। यह बात भेड़ के क्लोन डॉली के गर्भ धारण करने तथा फिर उसके माता बनने से और अधिक स्पष्ट हो गई है।

अभी मनुष्य का क्लोन तैयार नहीं किया जा सका लेकिन यहाँ हम यह मानकर चलें कि मनुष्य का क्लोन तैयार किया जा सकता है। मानों कि मनुष्य के दो क्लोन तैयार किये गये। दोनों की शक्ल सूरत एक जैसी ही है, यदि एक क्लोन को दूसरे की अपेक्षा ज्यादा अच्छा खाने पीने को मिले तथा अच्छा अनुकूल वातावरण मिले तो निश्चित रूप से बड़े होने पर दोनों के व्यक्तित्व में अन्तर आ जायेगा। दोनों का विकास अलग-अलग होगा ही और यदि यह मानें कि दोनों को समान वातावरण मिलें, दोनों को विकास के भी समान अवसर मिलें तो भी दोनों का व्यक्तित्व अलग-अलग ही होगा, मात्र शक्ल सूरत एक जैसी होगी।

क्लोनिंग में मादा के अण्डाणु के केन्द्रक को हटाकर जब किसी अन्य नर या मादा की कोशिका के केन्द्रक को विस्थापित करते हैं तो उसे प्रयोगशाला में एक निश्चित तापमान 30-40 सी. में रखते हैं। जिससे उस कोशिका में कोशिका विभाजन होने लगता है तथा फलस्वरूप उस एक कोशिका से अधिक संख्या में नूतन कोशिकाओं का निर्माण होता है तत्पश्चात् उन कोशिकाओं को मादाओं के गर्भ में स्थापित किया जा सकता है। जिससे एक बार क्लोनिंग करने पर बहुतायत से शिशुओं का क्लोन बनाया जा सकता है परन्तु वर्तमान में मात्र अभी तक एक ही क्लोन बनाने की प्रक्रिया प्रारम्भ की गई है जो डॉली भेड़ के रूप में है। मादा के गर्भ में स्थापित कोशिका से भ्रूण का निर्माण होता है जिससे कोशिका स्थापना से लेकर 7 दिन के अन्दर-अन्दर उस भ्रूण में जीव की उत्पत्ति होती है। भ्रूण में जीव की उत्पत्ति मादा के गर्भ में ही होती है, प्रयोगशाला में नहीं होती।⁶

इसी प्रकार सामान्य जन्म प्रक्रिया में भी मादा और नर की

निषेचन क्रिया होती है इस क्रिया में नर निषेचन के लिए असंख्यात् शुक्राणु का विसर्जन करता है जो असंख्यात् मादा के अण्डाणुओं को निषेचित करते हैं। परन्तु इस क्रिया में कुछ प्रभावशाली शुक्राणु ही मादा के कुछ अण्डाणु को निषेचित कर पाते हैं, जिससे भ्रूण की उत्पत्ति होती है। यदि प्रभावशाली शुक्राणु एक होता है तो एक भ्रूण बनता है। यदि प्रभावशाली शुक्राणु दो हुए तो दो भ्रूण बनते हैं, जिससे संतान की उत्पत्ति होती है। यह गर्भज पंचेन्द्रिय जीवों के विषय में है परन्तु कुछ पशु ऐसे भी होते हैं जिनके बच्चे दो से अधिक संख्या में होते हैं। यथा- सूकर के लगभग 10 से 12 बच्चे होते हैं। सर्प के हजारों की संख्या में बच्चों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जिन जीवों में गर्भ के द्वारा एक से अधिक बच्चों की उत्पत्ति देखी जाती है। उनके एक से अधिक नर के प्रभावशाली शुक्राणुओं का निषेचन मादा के अण्डाणुओं से होता है फलस्वरूप एक से अधिक भ्रूणों की उत्पत्ति होती है।

सामान्य जन्म की इस प्रक्रिया के अन्तर्गत निषेचन की प्रक्रिया में एक निश्चित तापमान की आवश्यकता होती है। जो मौसम पर निर्धारित होती है। इसी कारण गर्भ जन्म वाले जीवों की उत्पत्ति न अधिक गर्म तापमान में होती है और न अधिक शीत तापमान पर होती है बल्कि जीवों की उत्पत्ति शीतोष्ण तापमान पर होती है। जैनदर्शन में जन्म के तापमान के लिए नौ प्रकार की योनियाँ कहीं हैं। जिसमें से सचित्त, अचित्त, सचित्ताचित्त, शीत, उष्ण, शीतोष्ण, संवृत, विवृत, संवृतविवृत हैं। जिसमें से शीत, उष्ण, शीतोष्ण योनि गर्भजन्म वाले जीवों की होती है।⁷ इसीकारण गर्भ जन्म धारण करने वाले जीव ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा शीतऋतु, बसंतऋतु, वर्षाऋतु में गर्भ धारण करते हैं। जिससे भ्रूण तैयार होने के लिए शीतोष्ण तापमान मिल सके। अन्यदेशों में जहाँ शीत अधिक होती है वहाँ भी भ्रूण तैयार होने के लिए उचित तापमान नहीं मिल पाता जिससे वह ग्रीष्म ऋतु के अंत में तथा शीत ऋतु के प्रारम्भ में गर्भ धारण करते हैं तथा कुछ जीव तो गर्भ धारण करने के लिए वहाँ से अपना निवास छोड़कर अन्य शीतोष्ण तापमान वाले देशों में चले जाते हैं इसी

कारण भारत में अन्य देशों के पक्षियों का आगमन बसंत ऋतु में अधिक होता है तथा जहाँ अधिक शीत या अधिक उष्ण तापमान रहता है वहाँ की जनसंख्या भी कम होती है तथा जहाँ शीतोष्ण तापमान रहता है वहाँ की जनसंख्या अधिक होती है।

अतः क्लोनिंग के द्वारा गर्भजन्म में तथा जैनदर्शन में कहे सामान्य जन्म में तापमान, अधिक सन्तान के कारणों में सामानता दृष्टिगत होती है तथा जीव की उत्पत्ति के विषय में जहाँ क्लोनिंग में भ्रूण तैयार होने से कुछ दिनों तक का समय बताया गया है वहीं जैनदर्शन भी भ्रूण में जीव की उत्पत्ति का समय अधिक से अधिक 7 दिन तथा कम से कम अन्तर्मुहुर्त निर्धारित करता है।^१ जैनदर्शन के अनुसार भ्रूण में जीव की उत्पत्ति के लिए दृष्टांत आता है कि कोई व्यक्ति अपना ही पुत्र कैसे हो सकता है? उसके लिए कहते हैं यदि कोई गर्भज नर जीव अपनी मादा के साथ निषेचन करता है और उसकी मृत्यु दूसरे दिन हो जाती है तो वह नर गर्भज जीव मृत्यु उपरान्त अपनी मादा के गर्भ में जन्म ले सकता है तथा यह अवधि 7 दिन तक की हो सकती है। मृत्यु उपरान्त वह 7 दिनों के अन्तराल में कई जन्म धारण करके पुनः अपनी मादा के गर्भ में जन्म धारण कर सकता है।

आज भी हम देखते हैं कि दो जुड़वा भाई शक्ल सूरत में एक से होते हैं, दोनों में अन्तर कर पाना मुश्किल होता है, फिर भी उनमें से एक अधिक पढ़ लिख जाता है तथा दूसरा कम पढ़ा लिखा रह जाता है। एक सर्विस करने लगता है तथा दूसरा निजी व्यवसाय। आगे चलकर उनकी जिम्मेदारियाँ भी अलग-अलग हो जाती हैं। जिससे उनके व्यवहार में भी काफी अन्तर हो जाता है। इसप्रकार दो एक सी शक्ल वाले भाईयों का व्यक्तित्व भी अलग-अलग बन जाता है। इसी तरह दो एक जैसे क्लोन तथा डोनर पेरेन्ट के बीच भी अन्तर रहेगा।

दूसरा प्रश्न क्लोन के जन्म के प्रकार को लेकर है। यह वैज्ञानिकों की धारणा है कि बिना नर के सहयोग के भी जीव पैदा किया जा सकता है। मात्र मादा द्वारा भी जीव पैदा हो सकता है, लेकिन इस स्थिति में पैदा

होने वाला क्लोन जीव मादा ही होगा नर नहीं। इसप्रकार जो भी डोनर पेरेन्ट होगा वहीं क्लोन भी होगा। यदि डोनर पेरेन्ट नर है तो क्लोन भी नर होगा और यदि डोनर पेरेन्ट मादा है तो क्लोन भी मादा ही होगा।

सामान्य जन्म में भ्रूण की उत्पत्ति में कोशिका के केन्द्रक में मादा एवं नर के 23-23 गुणसूत्र होते हैं। जिससे जीव उत्पन्न होता है तथा क्लोनिंग में भ्रूण की उत्पत्ति में कोशिका के केन्द्रक में मादा या नर के किसी एक के 46 गुणसूत्र होते हैं। यदि मादा के केन्द्रक को विस्थापित किया जाता है तो मादा क्लोन तैयार होता है। यह देखकर सामान्य जन एवं वैज्ञानिकों के मानस में यह भ्रँति है कि बिना नर के सहयोग से भी जीव की उत्पत्ति हो सकती है जो मादा के रूप में ही है, परन्तु यह ध्यान देने योग्य विषय है कि डोनर पेरेन्ट माता के केन्द्रक में से जो 46 गुणसूत्र विस्थापित किए गए हैं। उन गुणसूत्रों में मादा के पिता के 23 गुणसूत्र अनुवांशिकी से उसमें विद्यमान हैं। इसकारण शिशु उत्पत्ति में 23 गुणसूत्र मादा के तथा 23 गुणसूत्र नर के चाहिए वे 46 गुणसूत्र एक ही मादा के केन्द्रक में पाए जाते हैं। अतः जीव उत्पत्ति में नर का अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग है। प्रत्यक्ष रूप से मादा का नर से निषेचन नहीं हुआ परन्तु तैयार कोशिका में माता-पिता के अनुवांशिकी गुणसूत्र डोनर पेरेन्ट मादा में तो पाए ही गए हैं। इसकारण क्लोनिंग में मादा के साथ सहयोग भी है तथा जैनदर्शन की यह धारणा की गर्भ जन्म में मादा एवं नर की आवश्यकता होती है यह सत्य प्रतीत हो रही हैं।

स्तनधारियों के क्लोन बनाने की प्रक्रिया में यह बात ध्यान देने योग्य है कि क्लोन के भ्रूण को मादा के गर्भाशय में रखा जाता है तथा उस भ्रूण में उस शरीर नामकर्म के योग्य जीव की उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् गर्भाशय के अन्दर ही बच्चे का विकास होता है तथा गर्भकाल पूरा होने के बाद ही क्लोन बच्चा पैदा होता है। यहाँ गर्भ की प्रक्रिया को छोड़ा नहीं गया है अतः जैनधर्म में जन्म के आधार पर गर्भ आदि जो भेद किये गये हैं, वहाँ कोई विसंगति नहीं आती है। हमें गर्भ जन्म की प्रक्रिया की जैन मान्यता में इतना जोड़ लेना होगा कि गर्भ जन्म वाले जीव मादा के गर्भ

से ही पैदा होंगे लेकिन वे प्रत्यक्ष रूप से बिना नर के सहयोग से भी पैदा हो सकते हैं। इस स्थिति में वे मादा ही होंगे लेकिन उनके पैदा होने में भी दो अलग अलग कोशिकाओं एक अण्डाणु तथा दूसरी अन्य का होना आवश्यक है।

यहाँ यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि भेड़ के क्लोन डॉली का जन्म भी इसी प्रक्रिया से हुआ था। अतः उसका जन्म भी गर्भ जन्म ही था। कुछ लोग डॉली को सम्मूर्च्छन जीवों की श्रेणी में रखते हैं, लेकिन वह बिल्कुल गलत है। डॉली भी अब एक माँ बन चुकी है, वह भी सामान्य भेड़ों की तरह है। यदि डॉली को सम्मूर्च्छन माना गया तो एक प्रश्न और पैदा हो जायेगा कि क्या सम्मूर्च्छन जीवों से भी गर्भजन्म होना संभव है? नहीं। जैनदर्शन में सम्मूर्च्छन जीवों से गर्भजन्म स्वीकार नहीं किया गया है। आचार्यों ने गर्भ जन्म वाले जीवों से सम्मूर्च्छन जीवों के जन्म के विषय में कहा है कि स्त्रियों के गुप्तांग, कांख, स्तन, मूत्र, मल आदि में सम्मूर्च्छन मनुष्यों की उत्पत्ति होती है।⁹ जो सम्मूर्च्छन जीवों की तरह ही प्रतिक्षण मरते तथा जन्म लेते रहते हैं। यदि क्लोन से उत्पन्न जीव को सम्मूर्च्छन मानेंगे तो गर्भजन्म वाले जीवों के गुणसूत्र से उत्पन्न जीवों की आयु सम्मूर्च्छनों के समान होगी, परन्तु ऐसा नहीं हुआ।

यह मानना सही नहीं है कि मनुष्य को प्रयोगशाला में भी पैदा किया जा सकता है। अभी तक प्रयोगशाला में स्तनधारी जीव पैदा नहीं किया जा सका है। हाँ, टेस्ट-ट्यूब में भ्रूण तैयार किया जा सका है, लेकिन उसका विकास मादा के (उदर) गर्भाशय में ही संभव हो सका है, क्योंकि उसके विकास के लिए आवश्यक ताप, दाब तथा खुराक मादा द्वारा ही उपलब्ध कराई जा सकती है।

कुछ लोग यह सोचते हैं कि भेड़ के क्लोन को भी टेस्ट-ट्यूब बेबी जैसा ही मानना चाहिए। चूँकि क्लोन के भ्रूण को प्रयोगशाला में टेस्ट-ट्यूब में तैयार किया गया, अतः इसे टेस्ट-ट्यूब बेबी माना जा सकता है।

अब एक अन्तिम प्रश्न यह रहता है कि जैनधर्म के अनुसार जीव के शरीर की रचना उसके नामकर्म के कारण होती है। कोई जीव कैसी शकल सूरत प्राप्त करेगा, इसका निर्धारण इसी नामकर्म से होता है। लेकिन यहाँ तो क्लोन के शरीर की रचना अब वैज्ञानिकों के हाथों में आ गई है। हम जैसी शकल सूरत बनवाना चाहें बनवा सकते हैं। ऐसी स्थिति में नामकर्म की अवधारणा तो अर्थहीन ही हो गई। लेकिन यह मान्यता उचित नहीं है, वस्तु स्थिति क्या है, यह समझने के लिए हमें कर्म सिद्धांत पर थोड़ा ध्यान देना होगा।

सबसे पहले हमें यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि प्रत्येक घटना मात्र कर्म से ही घटित नहीं होती। कर्म ही सब कुछ नहीं होते हैं। यदि हम कर्मों के अधीन ही सब कुछ घटित होना मान लेंगे तो यह वैसी ही व्यवस्था हो जाएगी जैसी कि ईश्वरवादियों की है कि जो कुछ होता है वह ईश्वर की इच्छा से होता है या फिर उन नियतिवादियों की जैसी स्थिति हो जाएगी कि सब कुछ नियति के अधीन है, हम उसमें कुछ भी बदलाव नहीं कर सकते हैं। यदि कर्म ही सब कुछ हो जाए तो उनको नष्ट करने के लिए न तो पुरुषार्थ का ही महत्त्व रह जायेगा और न ही मोक्ष संभव होगा, क्योंकि जैसे कर्म होंगे वैसा ही उदय होगा और उस उदय के अनुरूप ही हम कार्य करेंगे तथा नये कर्मों का बंध करेंगे। इससे तो पुरुषार्थ तथा मोक्ष की बात गलत सिद्ध हो जाएगी। अतः यह तय हुआ कि कर्म ही सब कुछ नहीं हैं।

कर्म एक निरंकुश सत्ता नहीं है, कर्म पर भी अंकुश है। कर्मों में परिवर्तन भी किया जा सकता है। भगवान महावीर ने कहा कि किया हुआ कर्म भुगतना पड़ेगा। यह सामान्य नियम है, लेकिन इसमें भी कुछ अपवाद हैं। कर्मों में उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण तथा संक्रमण संभव है जिसके कारण कर्मों में परिवर्तन भी किया जा सकता है। सामान्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि पुरुषार्थ द्वारा कर्मों की निर्जरा समय से पहले भी की जा सकती है। कर्मों की काल मर्यादा को घटाया तथा बढ़ाया जा सकता है। कर्म अपने सजातीय कर्म में भी बदल सकते हैं। उदय में आ

रहे कर्मों के फल देने की शक्ति को कुछ समय के लिए दबाया जा सकता है तथा काल विशेष के लिए उन्हें फल देने के लिए अक्षम किया जा सकता है, इसे उपशम कहते हैं।¹⁰

जैनाचार्यों के अनुसार संक्रमण का सिद्धांत कर्म को बदलने का सिद्धांत है। एक विशेष बात ध्यातव्य है कि कर्मों का विपाक (फल) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, भव के अनुसार होता है, इन्हें पंचपरावर्तन भी कहते हैं। यह कर्मों का फल इन निमित्तों के आश्रित है तथा उसी के अनुरूप अपना फल देते हैं। जैनदर्शन में नामकर्म की अवधारणा में जीव द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुरूप ही शरीर धारण करता है अर्थात् जैसा उसने नामकर्म का बंध किया है वैसा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उपस्थित होने पर वह शरीर धारण करता है। क्लोन की इस प्रक्रिया में शरीर के निर्माण की साधन सामग्री को वैज्ञानिकों ने एक कोशिका में एकत्र कर दिया है। अब उस कोशिका के शरीर के योग्य जिस जीव के नामकर्म का उदय होगा। वह जीव उस गर्भाशय में स्थित कोशिका में जन्म ले लेगा। इसे दूसरे विधि से भी समझा जा सकता है। रोटी सेंकने में रोटी सेंकने के उपकरण का एक निश्चित तापमान रहता है। यदि तापमान अनिश्चित हो जाए तो रोटी खराब हो जाती है। या यह कह सकते हैं कि आटे के अणुओं में जो तापमान सहन करने की क्षमता होती है उसे वह तापमान उपलब्ध कराया जाता है। इसीप्रकार जीव के शरीर संरचना में नामकर्म की आवश्यकता होती है। या यह कह सकते हैं कि नामकर्म के योग्य शरीर संरचना रूप द्रव्य उपलब्ध कराया जाता है। जिससे शरीर निर्माण के योग्य जिस जीव का नामकर्म होता है वह जीव क्लोन वाले शरीर में उत्पन्न होता है। इसप्रकार सामान्य जन्म में शरीर संरचना में नामकर्म का उदय तो होता ही है अपितु क्लोन से उत्पन्न शरीर की संरचना में भी नामकर्म का उदय होता है तथा कोशिका में जन्म लेने वाले जीव का शरीर नामकर्म तो डोनर पैरेन्ट के लगभग समान तो हो सकता है परन्तु अन्य सात कर्म उस डोनर पैरेन्ट के समान नहीं होते हैं क्योंकि वैज्ञानिकों ने शरीर योग्य सामग्री एकत्र की थी अन्य कर्म योग्य सामग्री एकत्र नहीं की।

इसीकारण क्लोन से उत्पन्न जीव के स्वभाव, हावभाव, विचारों, आयुकर्म, सुखदुःख रूप वेदनीय कर्म में, स्नेह और द्वेष भाव इत्यादि में डोनर पैरेन्ट से पर्याप्त अन्तर दिखाई देता है जब सामान्य अवस्था के जन्म में भी माता-पिता के गुणसूत्रों में शरीर के आकार प्रकार में समानता तो दृष्टिगत होती है परन्तु भावनात्मक समानता, कर्मगत समानता दृष्टिगत नहीं होती। तब डोनर पैरेन्ट के गुणसूत्र से उत्पन्न क्लोन जीव में कर्मगत समानता कैसे दृष्टिगत होगी।

निष्कर्ष

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कर्म सिद्धान्त के अनुसार एक ही प्रकार की शक्ल-सूरत वाले जीव पैदा कर देना या क्लोनिंग के दौरान कोशिका के केन्द्रक को परिवर्तित कर देना संभव है। अतः क्लोनिंग की प्रक्रिया कर्म सिद्धांत के लिए कोई चुनौती नहीं है। कर्म सिद्धांत को व्यवस्थित तरीके से समझ लेने पर इस प्रक्रिया की व्याख्या कर्म सिद्धांत के आधार पर आसानी से की जा सकती है।

संदर्भ

1. गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा-594, 595, पृष्ठ-268
2. गोम्मटसार कर्मकाण्ड, गाथा-8, पृष्ठ-4
3. From cell to cloning, page-10
4. cloning, page-17
5. The cell, page-25
6. The cell, page-25
7. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-2, सूत्र - 32, पृष्ठ-137।
8. कार्तिकेयानुप्रेक्षा
9. गोम्मटसार जीवकाण्ड, गाथा-92, पृष्ठ-63
10. जैनधर्म और दर्शन, पृष्ठ-165

अध्याय चतुर्थ

षड्रव्य विवेचन

द्रव्य का स्वरूप

संसार में समस्त दर्शन इस विश्व में किसी ऐसे द्रव्य की सत्ता को स्वीकारते हैं, जो शाश्वत्, नित्य और क्षय विहीन है। वह द्रव्य अपने अस्तित्व के साथ एक-दूसरे की सहायता भी करते हैं। जैन परम्परा में आचार्यों ने द्रव्य की सत्ता को नित्य और अविनाशी स्वीकार किया है। द्रव्य के अस्तित्व के बिना विश्व का निर्माण असंभव है। विश्व अनादि से है इसीकारण विश्व के उत्पादक तत्त्व द्रव्य भी अनादिकाल से हैं। अर्थात् साध्य का सद्भाव जब से होगा साधन का सद्भाव भी तभी से माना जायेगा।

आचार्य उमास्वामी तथा आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने द्रव्य के विषय में कहा है कि द्रव्य गुण और पर्याय से युक्त होता है।¹ जिस कारण से गुण की अपेक्षा नित्य तथा पर्याय की अपेक्षा अनित्य ठहरता है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में द्रव्य के स्वरूप के विषय में कहा कि- **उत्पादव्ययध्रौव्य युक्तं सत्², सद्द्रव्य लक्षणम्³** अर्थात् द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त होता है। द्रव्य में उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य की अपेक्षा परिणमन होता है। परन्तु परिणमन के होने पर भी उसके स्वरूप में हानि नहीं होती है। द्रव्य परिणमन होने के पश्चात् भी जो पूर्व और उत्तर परिणाम में समानता रहती है, वह द्रव्य है तथा जिसमें पूर्व और उत्तर परिणाम में असमानता रहती है, वह पर्याय है। इसकारण द्रव्य न उत्पन्न होता है, न नष्ट होता है, बल्कि उसकी पर्याय उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती है। जगत् का प्रत्येक पदार्थ परिणमनशील है। सारा विश्व परिवर्तन की धारा में बहा जा रहा है। जहाँ भी हमारी दृष्टि जाती है, सब कुछ बदल रहा है। प्रत्येक वस्तु प्रतिक्षण अपनी पुरानी अवस्था

को छोड़कर नित्य नवीन रूप धर रहा है। बालक युवा हो रहा है, युवा वृद्ध हो रहा है, वृद्ध मर रहा है। सर्वत्र परिवर्तन ही परिवर्तन है। चाहे जड़ हो या चेतन, सभी इस परिवर्तन की धारा में बहे जा रहे हैं। प्रत्येक पदार्थ विश्व के रंगमंच पर प्रतिक्षण नये रूप धर कर आ रहे हैं। वे अपनी पुरानी अवस्था को छोड़ते हैं, नये को ओढ़ते हैं। पुराने का विनाश और नये की उत्पत्ति ही इस परिवर्तन का आधार है। कच्चे आम का पक जाना ही तो आम का परिवर्तन है। बालक का युवा, युवा का वृद्ध हो जाना ही तो मनुष्य का परिवर्तन है। पुरानी अवस्था के विनाश को व्यय कहते हैं तथा नई अवस्था की उत्पत्ति को उत्पाद।⁴ नए की उत्पत्ति और पुराने के विनाश के बाद भी द्रव्य अपनी मौलिकता को नहीं खोता। कच्चा आम बदलकर भले ही पक जाने पर वह अपने आमपने को नहीं खोता। बालक भले ही वृद्ध हो जाए पर मनुष्यता नहीं बदलती। इस मौलिक स्थिति का नाम ध्रौव्य है, जो प्रतिक्षण परिवर्तित होते रहने के बाद भी पदार्थ में समरूपता बनाए रखता है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ उत्पाद व्यय-ध्रौव्य लक्षण वाला है। जगत् का कोई भी पदार्थ इसका अपवाद नहीं है। इसी कारण संसार में जितने द्रव्य हैं, उतने ही थे और उतने ही रहेंगे। उनमें से न कोई घटता है और न कोई बढ़ता है।

नित्यानित्यात्मकता

नित्यानित्यात्मकता जैनदर्शन का महत्त्वपूर्ण व आवश्यक सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार भी द्रव्य न सर्वथा अनित्य है, वह नित्यानित्य कहा गया है।⁵ यदि द्रव्य सर्वथा नित्य होता तो जगत् के सारे पदार्थ कूटस्थ हो जाते। न तो नदियाँ बह पातीं, न ही पेड़ों के पत्ते हिल पाते। बालक, बालक ही रहता, वह युवा न हो पाता, युवा युवा ही रहता, वह वृद्ध नहीं हो पाता, वृद्ध वृद्ध ही रहता, मर नहीं पाता। जो जैसा है, वह वैसा ही रहता। यदि पदार्थ अनित्य ही होता तो प्रतिक्षण बदलाव होते रहने के कारण हम एक दूसरे को पहचान ही नहीं पाते। प्रतिक्षण होने वाले

परिवर्तन की इस दौड़ में किसी का किसी से परिचय ही नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में न तो हमें कोई स्मृति होती, न ही होते हमारे कोई संबंध, जबकि ऐसा है ही नहीं, क्योंकि यह तो प्रत्यक्ष और अनुभव के विपरीत है। अतः जैनदर्शन में पदार्थ को नित्यानित्यात्मक कहा गया है।

नित्यानित्यात्मक होने के कारण द्रव्य को गुण, पर्याय वाला कहा गया है।⁶ गुण पदार्थ का नित्य अंश है, वह कभी भी नष्ट नहीं होता। उसकी अवस्थाएँ (पर्यायें) बदलती रहती हैं। पदार्थ अनेक गुणों का समूह है। उनमें होने वाला परिवर्तन ही पर्याय है। प्रत्येक गुण द्रव्य के आश्रित रहता है, किन्तु स्वयं अन्य गुणों से हीन नहीं होता है।⁷ इसलिए यह गुण होकर भी निर्गुण कहलाता है। गुण पदार्थ में सर्वत्र रहते हैं। ऐसा नहीं है कि वह पदार्थ के किसी एक अंश में रहता हो, वह तो तिल में तेल की तरह पूरे पदार्थ में व्याप्त होकर रहता है। सर्वत्र होने के साथ-साथ यह सर्वदा पाया जाता है, इसलिए इसे नित्य कहते हैं। पर्यायें क्षणक्षयी होती हैं, प्रतिक्षण मिटते रहने के कारण ये पर्यायें अनित्य कहलाती हैं।

गुण भी द्रव्य की तरह नित्यानित्यात्मक है। चूँकि सत् नित्या-नित्यात्मक है, इसलिए उसे उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य लक्षण वाला कहा गया है। गुण नित्य हैं, पर्याय अनित्य हैं, इसलिए द्रव्य को गुण पर्याय वाला भी कहते हैं। इन तीनों लक्षणों में ऐक्य है, इसलिए आचार्य श्री कुन्दकुन्द ने द्रव्य का लक्षण तीनों प्रकार से किया है-

द्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वय धुवत्त संजुत्तं।

गुण पज्जयासयं वा जं तं भण्णंति सव्वण्हु ॥⁸

अर्थात् भगवान् जिनेन्द्र द्रव्य का लक्षण सत् कहते हैं, वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है, अथवा जो गुण और पर्यायों का आश्रय है, वह द्रव्य है।

आचार्य श्री समन्तभद्र ने एक उदाहरण से द्रव्य की नित्यानित्यात्मकता की सुन्दर प्रस्तुति की है

घट मौलि सुवर्णार्थी नाशोत्पाद स्थितिष्वयम्।

शोक-प्रमोद माध्येस्थं जनो याति सहेतुकम् ॥⁹

एक राजा है जिसकी एक पुत्री है और एक पुत्र। उसके पास सोने का कलश है, पुत्री उसका हार बनवाना चाहती है। पुत्र उसे गलवाकर मुकुट बनवाना चाहता है। राजा पुत्र की भावना को पूर्ण करने के लिए कलश को गलवाकर मुकुट बनवा देता है। घट के नाश से पुत्री दुःखी होती है, पुत्र आनन्दित होता है। राजा स्वर्ण का स्वामी है, घट के टूटने और मुकुट के बनने दोनों में उसका स्वर्ण सुरक्षित है, इसलिए यह मध्यस्थ रहता है। अतः वस्तु त्रयात्मक है।

यद्यपि द्रव्य को गुण, पर्याय वाला कहा गया है तथा उनके परस्पर भेद भी बताये गए हैं, किन्तु ये पृथक्-पृथक् नहीं हैं। इनमें कोई सत्तागत भेद नहीं है, अपितु तीनों एक रस रूप हैं, एक सत्तात्मक हैं। पर्याय से रहित गुण और द्रव्य तथा द्रव्य और गुण से रहित कोई पर्याय नहीं होती। तीनों की संयुक्ति ही द्रव्य है। जैसे स्वर्ण अपने पीतत्वादि गुण तथा कड़ा, कुण्डलादि आकृतियों से रहित नहीं मिलता, वैसे ही पदार्थ जब भी मिलता है, वह अपने गुण और पर्यायों के साथ ही मिलता है। इसलिए आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी ने पर्याय को द्रव्य और गुण से अपृथक् कहा है-

पज्जयविजुदं दव्वं दव्व विजुत्ता य पज्जया णत्थि।

दोण्हं अणण्णं भूदं भावं समणा परुवेत्ति ॥¹⁰

अर्थात् पर्याय से रहित कोई द्रव्य नहीं तथा द्रव्य से रहित कोई पर्याय नहीं है, दोनों अनन्य भूत हैं, ऐसा जिनेन्द्र भगवान् कहते हैं। वस्तुतः पदार्थ गुण और पर्यायों का अपृथक् गुच्छा है।

वैज्ञानिकों में सर्वप्रथम द्रव्य की सत्ता को स्वीकार करने वाले लीवाजिए ने 1789 में कहा कि इस अनन्त विश्व में द्रव्य का परिणाम सदा समान रहता है, इसमें कोई न्यूनाधिकता नहीं होती। न किसी वर्तमान द्रव्य का सर्वथा नाश होता है और न किसी नए द्रव्य की उत्पत्ति होती है। साधारण दृष्टि से जिसे द्रव्य का नाश होना समझा जाता है, वह उसका परिवर्तन मात्र है।¹¹ उदाहरण के लिए दूध का दही होना। परन्तु वस्तुतः वह नष्ट नहीं होता है।

इसी प्रकार जहाँ कहीं कोई नवीन वस्तु उत्पन्न होती प्रतीत होती है, वह भी वस्तुतः किसी पूर्ववर्ती वस्तु का रूपान्तर मात्र है। लोहे में जंग का लगना कोई नया द्रव्य उत्पन्न नहीं हुआ अपितु धातु की ऊपरी सतह जल और वायुमंडल में ऑक्सीजन के संयोग से लोहे के ऑक्सीहाइड्रेट के रूप में परिणत हो गई। भौतिकवाद पदार्थों के गुणात्मक अंतर को परिमाणात्मक अंतर में बदल देता है। शक्ति परिमाण में परिवर्तन नहीं, पर्याय की अपेक्षा परिवर्तनशील है। प्रकाश, तापमान, चुम्बकीय आकर्षण आदि का ह्रास नहीं होता मात्र एक दूसरे में परिवर्तित होते हैं।

पर्याय परिवर्तन के द्वारा वस्तुओं में बहुत सारी बातें घटित होती हैं। इसमें ऊर्जा की वृद्धि और हानि भी है। ऊर्जा परिणमन के द्वारा ही प्रकट होती है। आइंस्टीन ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि द्रव्य को शक्ति में और शक्ति को द्रव्य में बदला जा सकता है। जैनदर्शन की मान्यता है कि द्रव्य के गुण और पर्याय आपस में परिवर्तित होते रहते हैं। आइंस्टीन से पहले वैज्ञानिक जगत में यह माना जाता था कि द्रव्य को शक्ति में और शक्ति को द्रव्य में नहीं बदला जा सकता। दोनों स्वतंत्र हैं। किन्तु आइंस्टीन के समय से यह सिद्धान्त बदला गया।¹²

जैनदर्शन के अनुसार द्रव्य में अनन्त शक्ति है। वह द्रव्य चाहे जीव हो या पुद्गल। वह शक्ति परिणमन के द्वारा प्रकट होती रहती है। आज के वैज्ञानिक जगत में जितने प्रयोग हो रहे हैं, उनका क्षेत्र पौद्गलिक है।

पौद्गलिक वस्तु को उस स्थिति में ले जाया जा सकता है, जहाँ उसकी स्थूलता समाप्त हो जाए, उसका द्रव्यमान या द्रव्य संहति समाप्त हो जाए और इसे शक्ति के रूप में बदल दिया जाए। जैनदर्शन ने द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक इन दो नयों से विश्व की व्याख्या की है तथा द्रव्य में होने वाले परिवर्तन को स्पष्ट किया है।

द्रव्यों के भेद

जैनधर्म में द्रव्यों की संख्या छह कही गई है। ये द्रव्य हैं - जीव, अजीव, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। इन छह द्रव्यों की सहस्थिति को लोक कहते हैं। जैन साहित्य में ब्रह्माण्ड को विश्व या लोक कहा है। इस लोक के बाहर केवल अनन्त आकाश है, उसे अलोकाकाश कहते हैं। जैनों ने सर्वप्रथम लोक-अलोक को जाना फिर अन्य द्रव्यों की मीमांसा की। लोक का आकार उसके मध्य बिन्दु रूचक प्रदेश को तथा लोक की सीमाएँ, लोक-अलोक की व्यवस्था, अस्तित्व के मौलिक द्रव्य आदि से संबंधित तथ्यों पर विमर्श कर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह ब्रह्माण्ड किसी के द्वारा निर्मित नहीं है और न ही इसका कभी अंत होने वाला है। जैन दृष्टि से विश्व संरचना, ज्योमिती के सार्वभौम नियमों का पालन करती हुई शाश्वत् तथा स्थायी है यद्यपि इसमें स्थित द्रव्य पर्याय रूप से परिवर्तनशील है।

आचार्यों के अनुसार सृष्टि और सृष्टि संचालन के लिए जैनदर्शन ने किसी ईश्वरीय सत्ता को स्वीकार नहीं किया इसलिए उन्होंने सार्वभौम और सामयिक नियमों की खोज की। जैन दृष्टि के समान ही आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस ब्रह्माण्ड की संरचना में ईश्वर को नहीं माना है। आइंस्टीन का यह वाक्य जैन दृष्टि से अत्यन्त मार्मिक है कि ईश्वर के लिए कुछ भी करने को नहीं बचा है क्योंकि प्रकृति अपने नियमों से कार्य कर रही है। वर्तमान के प्रसिद्ध भौतिक शास्त्री प्रोफेसर हाकिंग के अनुसार भी यह सृष्टि अनादि अनन्त है। जैनधर्म के सिद्धान्तों का

प्रतिपादन इन वैज्ञानिकों ने किया। जैनदर्शन भी सृष्टि के संचालन में ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार कर छह द्रव्यों के कारण सृष्टि का संचालन स्वीकार करता है तथा ये छह द्रव्य कभी समाप्त होने वाले नहीं हैं इस कारण यह सृष्टि भी अनादि अनन्त है।

जीव द्रव्य और विज्ञान

जीवद्रव्य के विषय में जितना अधिक गहराई से जैनदर्शन में वर्णन प्राप्त होता है, उतना विज्ञान जीव द्रव्य को स्पष्ट नहीं कर पाया है।

जीवों को विज्ञान में मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया है।

1. वनस्पति विज्ञान 2. पशु विज्ञान।

लेकिन बहुत से ऐसे जीव हैं, जो न तो वनस्पति विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं, न पशु विज्ञान के अन्तर्गत आते हैं, उन्हें सूक्ष्म जीवों के अन्तर्गत लिया गया है।

जैनदर्शन में सूक्ष्म जीवों की परिभाषा में कहा है कि जो जीव न दूसरों को बाधा पहुँचाते हैं और न दूसरों से बाधा को प्राप्त होते हैं तथा जो चक्षु इन्द्रिय के ज्ञान का विषय भी नहीं होते उन्हें सूक्ष्म जीव कहते हैं। विज्ञान, बैक्टेरिया, वायरस को सूक्ष्म जीव मानता है, जो जैन दर्शन के अनुसार सम्यक् प्रतीत नहीं होते, क्योंकि वायरस को जीव विज्ञान में इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से देखा जा सकता है तथा वैज्ञानिकों ने वायरस को मारने के लिए अनेक उपाय भी खोज लिए हैं, अर्थात् वैज्ञानिक वायरस को बाधा पहुँचाते हैं तथा वायरस अन्य जीवों को बाधा पहुँचाते हैं, इस कारण वायरस तथा बैक्टेरिया आदि विज्ञान के सूक्ष्म जीव जैनदर्शन में सूक्ष्म जीवों की श्रेणी में नहीं आते हैं। उन्हें जैनदर्शन बादर के रूप में स्वीकार करता है।¹³ इस बैक्टेरिया के विषय में पूर्व के अध्यायों में विस्तृत वर्णन किया जा चुका है।

जैनदर्शन में एकेन्द्रिय जीवों का वर्गीकरण सर्वार्थसिद्धिकार पंचस्थावरों के रूप में करते हैं, जिसमें पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वायुकायिक, अग्निकायिक तथा वनस्पतिकायिक।¹⁴ जैनदर्शन में वनस्पति को सजीव माना गया है, उसे एकेन्द्रिय जीव की संज्ञा प्राप्त है। वह श्वास लेता है, उसमें आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये चारों संज्ञाएँ पाई जाती हैं।

वह कषायवान् भी होता है, अन्य जीवों की तरह उसमें मति व श्रुतज्ञान भी होता है। परन्तु उसका यह ज्ञान सम्यक्त्व के अभाव में अज्ञान ही माना गया है।

जैनदर्शन में वनस्पति के संबंध में कही गई बातें आज विज्ञान ने यंत्रों के प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दी हैं। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ. जगदीश चन्द्र बसु के प्रयोगों ने वनस्पति में चेतना, संवेदना, श्वसन, जन्म-मरण आदि जीवन के सभी गुण सिद्ध किये हैं।¹⁵ वनस्पति के विषय में विज्ञान का कहना है कि वनस्पति में लेश्याएँ, कषायें, संज्ञाएँ और संवेदनाएँ आदि भी पाई जाती हैं। इसलिए हमारे जीवन में पेड़ पौधें उतनी ही आत्मीयता के पात्र हैं, जितने हमारे परिवार के सदस्य हैं।

लेश्या के विषय में सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में कहा गया है कि कषाय से युक्त तथा मन, वचन, काय की क्रिया को लेश्या कहते हैं। ये लेश्याएँ दो प्रकार की हैं, द्रव्यलेश्या, भावलेश्या। शरीर के रंग की अपेक्षा द्रव्यलेश्या होती है तथा आत्मपरिणाम की अपेक्षा भावलेश्या होती है। ये भाव लेश्याएँ छह प्रकार की होती हैं। जिसमें, कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल इन छह लेश्याओं में से तीन लेश्याएँ शुभ तथा तीन लेश्याएँ अशुभ होती हैं। इनमें वनस्पति कायिक जीवों के तीन अशुभ लेश्याएँ पाई जाती हैं।¹⁶

तिलोयपण्णत्तिकार आचार्य यतिवृषभ ने अशुभ लेश्याओं का स्वरूप बताते हुए कहा है कि-तीव्र क्रोध, बैरभाव, क्लेश, संताप, हिंसा से युक्त, तामसीभाव कृष्णलेश्या के प्रतीक हैं तथा आलस्य, मूर्खता,

भीरूता, अतिलोलुपता आदि होना नील लेश्या के प्रतीक हैं एवं निंदा, ईर्ष्या, रोष, शोक, अविश्वास आदि कापोत लेश्या के लक्षण हैं।¹⁷ इन तीनों लेश्याओं के लक्षण के अनुरूप वैज्ञानिक उदाहरण से इन परिभाषाओं की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि तस्मानिया के जंगलों में होरिजन्टल स्क्रब नामक वृक्षों में अत्यन्त हिंसात्मक प्रवृत्ति देखने में आती है। ये वृक्ष अपने शाखाओं से जीवों को मृत्यु के मुख में पहुँचा देते हैं। यह इनकी कृष्ण लेश्या है तथा कुछ वृक्ष एवं पौधे आलसी या हठी स्वभाव वाले होते हैं उनके बीज सुप्तावस्था में पड़े रहते हैं। शंखपुष्पी, बथुआ, बैंगन आदि के बीजों को अंकुरित कराने के लिए उन्हें उपचारित करना पड़ता है। इन्हें उच्चताप, निम्नताप, प्रकाश, अम्ल पानी और कुछ रासायनिक पदार्थों के प्रभाव से सक्रिय किया जाता है। तभी अंकुरण हो पाता है। इसी प्रकार तम्बाकु, गोखरू, सेव, सिंघाड़ा, चीड़ आदि में भी ऐसी सुप्तावस्था होती है। पादप, यूटीकुलेशिया, वटरवर्ट सनड्यू आदि पौधें अपनी गंध, रंगरूप आदि से कीड़ों को आकर्षित करते हैं तथा उन्हें खाने की लोलुपता इनमें विशेष पाई जाती है। इस कारण इनमें नील लेश्या के सभी गुण पाये जाते हैं। कुछ पौधें एवं वृक्ष दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाले होते हैं। वनस्पतियों में नागफनी, काकतुरई, कौंच, चमचमी आदि अनेक ऐसे उदाहरण हैं जो अपने काँटे, दुर्गन्ध या खुजली देने वाले अवगुणों से युक्त होते हैं। इनको स्पर्श करने या इनके समीप जाने से कुछ समय के लिए कष्ट अवश्य झेलना पड़ता है। इनमें कपोत लेश्या के लक्षण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।¹⁸

हानिकारक वनस्पतियों के अतिरिक्त कुछ वनस्पतियाँ मनुष्यों के लिए लाभप्रद भी होती हैं। उनमें अशुभ लेश्या होते हुए भी हित की प्रवृत्ति पाई जाती है। इसीप्रकार कुछ वनस्पतियाँ कषायों से युक्त तथा संज्ञाओं से युक्त, संवेदनाओं से युक्त होती हैं।

जैन ग्रन्थों में जहाँ जीव द्रव्य के विषय में आचार्यों ने विस्तार से विवेचन किया है, परन्तु वैज्ञानिक जीव द्रव्य में आत्मा की सिद्धि नहीं

कर पाये। फिर भी वह वनस्पति में जीव को मानते हैं तथा वायरस कोशिका इत्यादि को जीव मानते हैं, जिन्हें जैनदर्शन में बादर जीवों के नाम से जाना जाता है, इस प्रकार जैनदर्शन के सिद्धान्तों में जीव की सिद्धि तो है ही अपितु विज्ञान में भी अल्परूप से जीव की सिद्धि प्राप्त होती है।

पुद्गल द्रव्य और विज्ञान

आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने षट्द्रव्यों में जीवद्रव्य के पश्चात् संसार में भ्रमण करने तथा संसार से छूटने के लिए पुद्गल द्रव्य का अध्ययन भी आवश्यक कहा है। पुद्गल द्रव्य के स्वरूप के विषय में सर्वार्थसिद्धिकार ने कहा है **अजीवकाया धर्माधर्माकाश पुद्गलः**¹⁹ अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश, पुद्गल द्रव्य, अजीव तथा कायवान् है। षट्द्रव्यों में मूर्त द्रव्य एक पुद्गल द्रव्य मात्र है, उस पुद्गल द्रव्य की सत्यार्थता, स्वभाव, उत्पत्ति, परिवर्तन, विकास, म्लानता आदि विषयों का विश्लेषण जैन सिद्धान्त के आधार पर एवं आधुनिक विज्ञान की पद्धति के आधार पर होना आवश्यक है।

आचार्य अकलंक स्वामी ने राजवार्तिक ग्रन्थ में पुद्गल की परिभाषा में कहा है कि **पूरणगलनान्वर्थ संज्ञत्वात् पुद्गलः**²⁰ अर्थात् जिसका पूरण, गलन होता है, वह पुद्गल कहलाता है। पुद्गल द्रव्य को तत्त्वार्थ सूत्र में **रूपिणः पुद्गलः**²¹ कहकर रूपी (मूर्त) पदार्थों में गिनाया है अर्थात् इन्द्रियगोचर सभी द्रव्य पुद्गल द्रव्य ही है। पुद्गल को विज्ञान मैटर के नाम से जानता है। यह ही एक मात्र मूर्तिक पदार्थ है। सर्वार्थसिद्धि में मूर्त के विषय में कहा गया है कि जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण होता है वह पुद्गल है।²² इन चारों गुणों में से यदि पुद्गल में एक भी गुण दिखता है तो उसमें सभी गुण विद्यमान रहते हैं। पुद्गल अखण्ड द्रव्य नहीं है। उसका छोटा रूप अणु है तथा बृहत् रूप महास्कन्ध है। इस आधार पर पुद्गल के आचार्यों ने दो भेद किए हैं। **अणवः स्कन्धाश्च**²³ अर्थात् अणु और स्कन्ध। जैनधर्म में अणु को ही परमाणु की संज्ञा दी गई है।

अणु, स्कन्ध और विज्ञान :

आचार्यों ने सूक्ष्म भार रहित पुद्गल को अणु कहा है। यह अणु भी चतुःगुण वाला है। इसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण तो पाये ही जाते हैं। जैन साहित्य में पुद्गल के अविभागीय परिच्छेद परमाणु में हल्का, भारी, रूक्ष, स्निग्ध, शीत, उष्ण, कड़ा, नरम, इनमें से दो प्रकार का स्पर्श पाया जाता है। गन्ध से एक, रस से एक तथा वर्ण से एक गुण पाया जाता है। इसप्रकार पाँच प्रकार का गुण पुद्गल में पाया जाता है।

जो इन्द्रियों से परे, सूक्ष्मातिसूक्ष्म, गोलाकार युक्त है, आग और पानी से जो विनाश को प्राप्त न होता है, ऐसा पुद्गल का अविभागी भाग परमाणु कहलाता है। परमाणु भार रहित और प्रदेश रहित है। करोड़ों अणु कण एक साथ होकर एक प्रदेश में अवगाहन पाने की सामर्थ्य रखते हैं। इससे यह ज्ञात होता है कि अणुओं को जगह देने की शक्ति तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप पाने की शक्ति है।

विज्ञान के क्षेत्र में अब तक की मान्यता यह है कि पदार्थ का मौलिक गुणभार है, जिसमें भार नहीं है, उसे पदार्थों में ग्रहण नहीं किया जाता है। भौतिक शास्त्र की विकास यात्रा में कुछ ऐसे कणों का पता चला है जो भारहीन होते हैं, लेकिन पदार्थ की भारहीनता संबंधी ज्ञान अपनी प्रारंभिक अवस्था में है, परन्तु वैज्ञानिक धीरे-धीरे इन भारहीन पदार्थों को भार सहित घोषित कर रहे हैं, जब भारहीन कणों को पूर्ण मान्यता मिलेगी तब भौतिक शास्त्र की मान्यताओं में एक क्रान्ति आएगी और जैनदर्शन के द्वारा निर्दिष्ट अणु की वास्तविक स्थिति जानने में मदद मिलेगी।

परमाणु की सार्थकता के विषय में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि में कहा है कि **प्रदेश्यन्ति इति प्रदेशाः परमाणवः**²⁴ अर्थात् परमाणु से ही प्रदेश की गणना मापी जाती है। यदि अणु का अभाव मान लिया जाए तो प्रदेश की गणना असंभव हो जाएगी। इसी विषय में पंचास्तिकाय में कहा गया है **अणुशब्देनात्रप्रदेशा गृह्यन्ते**²⁵ अर्थात् अणु शब्द से यहाँ प्रदेश ग्रहण किए जाते हैं।

आधुनिक अणु एवं परमाणु में प्रोट्रोन एवं न्यूट्रोन पाये जाते हैं, ये भी अणु नहीं हैं। जैनागम में प्रदेश स्थिर, आकार रहित अणु को सूक्ष्म, अभेद, दो स्पर्श युक्त, एक रस, एक गंध, एक वर्ण युक्त कहा है, इस प्रकार का वर्गीकरण विज्ञान में भी देखने को मिलता है।

जैन धर्म में अणुओं के गुण		विज्ञान में कथित क्वार्कस्
स्पर्श	स्निग्ध, शीत, रूक्ष, उष्ण	दो प्रकार का
गन्ध	सुगन्ध, दुर्गन्ध	एक प्रकार की
वर्ण	पीला, नीला, लाल, श्वेत, काला	प्रत्येक के त्रिवर्ण चिह्न
रस	मीठा, कडुवा, खारा, कषायला, खट्टा	6
भार	नहीं	है।

विज्ञान के अनुसार क्वार्कस का विभाजन प्रायः आगमानुकूल है। यह एक आश्चर्यजनक सत्य है। कुछ बातों में भिन्नता भी है। जैसे-इनका वजन है, इनकी संख्या बारह है, जिसमें 6 प्रतिपक्षी माने गये हैं। पुद्गल कण सम-विषम के मिश्रण से बनते हैं, इन्हें हम स्निग्धाणु (सम पुद्गल कण) या रूक्षाणु (विषम पुद्गल कण) मान सकते हैं। इसी प्रकार मौलिक अणुकण में क्वार्कस के अतिरिक्त लेपटोन्स तथा गेजबोसोंस भी होते हैं।

विज्ञान के अनुसार अणु रासायनिक तत्त्व का सूक्ष्मतम कण है, जिसमें रासायनिक गुण बने रहते हैं। यह अंग्रेजी शब्द **एटमग्रीक** भाषा के शब्द एटोमॉस से लिया गया है, जिसका अर्थ अविभाज्य है। प्रारंभ में विज्ञान ने अणु को अविभाज्य ही माना था लेकिन बाद में जब अणु का भी तीन प्रकार से विभाजन हो जाने से यह अविभाज्यपना विज्ञान की दृष्टि में गलत सिद्ध हुआ और उस अविभाज्य पदार्थ की खोज नहीं हो पाई, जो वास्तविक अणु है तीन प्रकार से विभाजित कण को विज्ञान अणु कहता है, परन्तु जैनसिद्धान्त में अणु अविभाजित कण है, इस विषय में

आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने कहा है **नाणोः**²⁶ अर्थात् जो अणु है वह दो इत्यादि प्रदेश वाला नहीं है वह मात्र एक प्रदेशी होता है, उसका विभाजन असंभव है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने भी अणु के विषय में कहा है कि जिसका न आदि है, न मध्य है, न अन्त है वही परमाणु है वह इन्द्रिय अगोचर है।²⁷

नाभिकीय रूपान्तरण और अणु, स्कन्ध की उत्पत्ति

विज्ञान नाभिकीय रूपान्तरण को अणुओं का विघटन मानता है। विज्ञान कहता है कि रेडियो एक्टिव क्षय नामक प्रक्रम के कारण नाभिकों का रूपान्तरण हो सकता है। जब नाभिकीय रूपान्तरण स्वाभाविक रूप से होता है तो ऐसे प्रक्रम को रेडियो एक्टिविटी कहा जाता है। रेडियो एक्टिव रूपान्तरण विभिन्न तरीकों से होता है, लेकिन उनमें अल्फा क्षय (हीलियम नाभिक का उत्सर्जन) तथा बीटा क्षय (इलेक्ट्रॉन का उत्सर्जन) प्रमुख है। जब उत्तेजित नाभिक बहुत अधिक उच्च ऊर्जा वाले प्रोट्रॉन का उत्सर्जन करता है तो उसको गामा किरण कहा जाता है। इलेक्ट्रॉन का क्षय परस्पर क्षीण आणविक क्रियाओं के कारण होता है।²⁸

नाभिकीय रूपान्तरण नाभिकीय अभिक्रियाओं में भी होता है। नाभिकीय संलयन में दो हल्के नाभिक जुड़ते हैं तथा मिलकर एक बड़ा नाभिक बनाते हैं तथा नाभिकीय विखंडन में एक बड़ा नाभिक दो या उससे अधिक छोटे नाभिकों में विघटित हो जाता है।

सर्वार्थसिद्धि में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने अणु और स्कन्ध की उत्पत्ति के विषय में कहा है कि **भेदाणु**²⁹ **भेदसंघातेभ्यः उत्पद्यन्ते**³⁰ अर्थात् अणु की उत्पत्ति केवल भेद या विखंडन से होती है तथा स्कन्ध की उत्पत्ति भेद (विखंडन), संघात (संलयन) अथवा भेद संघात दोनों से होती है। सर्वार्थसिद्धि के इस सूत्र में वर्णित व्याख्या को यदि विज्ञान की नाभिकीय संलयन और विखंडन की प्रक्रिया से देखा जाये तो यह नाभिकीय संलयन तथा विखंडन अणु और स्कन्ध की उत्पत्ति का कारण हो सकता है।

जब एक बड़ा नाभिक एक से अधिक बार नाभिकीय विखंडन की प्रक्रिया में प्रयुक्त होता है तो उससे पहले छोटे स्कन्ध की उत्पत्ति होती है परन्तु बार-बार की विखंडन प्रक्रिया में वह अणु रूप में परिवर्तित हो सकता है तथा नाभिकीय संलयन प्रक्रिया से जब दो हल्के नाभिक या दो भारहीन अणु अथवा भार सहित अणु (विज्ञानपेक्षा से) भार सहित स्कन्ध (जैन दर्शनापेक्षा) से संलयन प्रक्रिया में सम्मिलित होते हैं तो एक बड़े स्कन्ध की उत्पत्ति करते हैं और जब संलयन प्रक्रिया बार-बार होती है तो एक ऐसा स्कन्ध उत्पन्न हो सकता है। जिसे जैनदर्शन में चाक्षुष स्कन्ध कहते हैं तथा बहुत बड़े चाक्षुष स्कन्ध का विखंडन प्रथम अवस्था में किया जाता है तो वह भी चाक्षुष स्कन्ध उत्पन्न करता है। इसे सर्वार्थसिद्धिकार पूज्यपाद स्वामी ने एक सूत्र में कहा है कि **भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः**³¹ अर्थात् भेद तथा संघात से चाक्षुष स्कन्ध उत्पन्न होता है।

अणु की गति एवं आकार

1. अणु बहुत छोटा होता है।
2. एक बाल की चौड़ाई में लगभग दस लाख अणु होते हैं।
3. एक धूल के कण में अनुमानतः 3 लाख करोड़ अणु होते हैं।³²

अणु को ऑप्टिकल माइक्रोस्कोप द्वारा नहीं देखा जा सकता है, क्योंकि अणु प्रकाश के उन तरंग दैर्ध्य से भी छोटा होता है, जिन्हें मनुष्यों के नेत्रों द्वारा नहीं देखा जा सकता है।

वैज्ञानिक तरीकों से पता चलता है कि गैसीय अणु हवा में 500 मी. प्रति सेकेण्ड (लगभग 1100 मील प्रति घंटा या 1800 किमी. प्रतिघंटा) के वेग से चलता है परन्तु जैन सिद्धान्त इससे भी अधिक अणु की गति को सूक्ष्म बताता है। आचार्यों ने कहा है कि अणु एक समय में 14 राजू तक गति कर लेता है। विज्ञान की अपेक्षा से जिस अणु की गति बताई गई है, वह जैनदर्शन की अपेक्षा से सूक्ष्म स्कन्ध की हो सकती है।

स्कन्ध की उत्पत्ति के विषय में कहा गया है कि ये बंधे हुए अणुओं का समूह या सूक्ष्म-स्कन्ध के मेल से महास्कन्ध बनता है। इस अपेक्षा से स्कन्धों के अनेक रूप हैं, सूक्ष्म-सूक्ष्म, सूक्ष्म, सूक्ष्म-स्थूल, स्थूल-सूक्ष्म, स्थूल, स्थूल-स्थूल आदि रूप से विभाजित है। इनमें सूक्ष्म और सूक्ष्म-सूक्ष्म नेत्रेन्द्रिय गम्य नहीं हैं।

पुद्गल की पर्यायें

पुद्गल के कई प्रकार होते हैं, बंध, भेद, प्रकाश, अंधकार, ताप, छाया, आकार आदि इनको पौद्गलिक मानना, जैनदर्शन की सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है। जैनदर्शन के सैद्धान्तिक ग्रन्थ में पुद्गल की पर्यायों के विषय में आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में कहा है कि **शब्दबंध सौक्ष्म्यस्थौल्य संस्थानभेद तमश्छायातपोद्योतवन्तश्च**³³ अर्थात् इस चराचर संसार में जितने भी प्रकार के रूपी द्रव्य दृश्यमान हैं वह सब पुद्गल की पर्यायें ही हैं चाहे वह शब्द, बंध, सूक्ष्मता, स्थूलता, संस्थान (आकार) भेद, तम, छाया, उद्योत, आतप आदि सूक्ष्म पदार्थ ही क्यों न हो। जैनदर्शन की विशेषता है कि इसने शब्द को भी पौद्गलिक माना है जबकि अन्य दर्शनों में शब्द को आकाश का गुण अथवा आकाश को शब्द तन्मात्रा से उत्पन्न माना गया है।

शब्द

शब्द के विषय में आचार्य अकलंक देव ने कहा है कि **शपत्यर्थमाह्वयति प्रत्याययति शप्यते येन**³⁴ अर्थात् जो अर्थ को कहता है अथवा जिसके द्वारा अर्थ कहा जाता है, वह शब्द है। इस शब्द को सर्वार्थसिद्धि में दो प्रकार का कहा गया है भाषात्मक और अभाषात्मक। जो शब्द दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों के द्वारा प्रयोग में लिए जाते हैं, वे भाषात्मक हैं तथा जो अजीव पदार्थ से उत्पन्न होते हैं वे अभाषात्मक हैं।³⁵ इन दोनों प्रकार के शब्दों की उत्पत्ति में ध्वनि का उत्पन्न होना आवश्यक है, जिसे पुद्गल की पर्याय कहा है, इसी ध्वनि को वैज्ञानिक पदार्थमय मानते हैं तथा इस पर विस्तार से कार्य भी किया है।

मंदिर में घंटानाद की ध्वनि होती है, वह भी हर्ष का प्रतीक है। गम के समय मंदिरों में घंटानाद भी नहीं किया जाता है। विज्ञान भी इस बात को कहता है कि घंटानाद व्यक्ति के अंतरंग उत्साह को व्यक्त करता है तथा घंटानाद से उत्पन्न ध्वनि पुद्गल के कम्पन का परिणाम है, पश्चिम के वैज्ञानिकों ने घंटे की ध्वनि से कर्ण इन्द्रिय से अल्प श्रवण करने वालों को स्वास्थ्य लाभ देना भी प्रारंभ कर दिया है। वैज्ञानिक कहते हैं कि घंटे की ध्वनि से जहाँ मन में उत्साह रहता है, वहीं कर्ण में स्थित जीवाणुओं का भी नाश होता है। जिससे सुनने में सहायता मिलती है। ये ध्वनि की तरंगे असंख्य योजनों तक पहुँच सकती हैं। शब्द ध्वनि को जैनदर्शन में लोक व्यापी कहा गया है। विज्ञान के द्वारा यह सिद्धान्त सिद्ध किया जा चुका है। वर्तमान में दूरभाष के साधनों के द्वारा हम अन्य स्थान की ध्वनि को अपने पास प्राप्त कर सकते हैं, रेडियो, मोबाइल, टेलीफोन, वायरलेस, इत्यादि शब्दों की ध्वनि को प्रेषित करने का साधन बन चुके हैं। विज्ञान कहता है कि पदार्थ का कम्पन वायु में तरंगे पैदा करता है और यही ध्वनि है, जो आकाश में विस्तार लेती है।

जैनदर्शन का सिद्धान्त है कि द्रव्य कभी नाशवान नहीं है इसी परिभाषा को सर्वार्थसिद्धि में द्रव्य को नित्य अवस्थित कहा है तथा पुद्गल द्रव्य भी नित्य है, इस सिद्धान्त के आधार पर वैज्ञानिक अनुसंधान कर रहे हैं कि हमारे पूर्वज मुनि, केवली-भगवन्तों ने जो व्याख्यान किया है, वे शब्द आकाश में व्याप्त हैं। इन ध्वनि शब्दों को पुनः एकत्रित करके अपने पूर्वजों की ध्वनि को सुनने का प्रयास करना चाहते हैं। इसमें वैज्ञानिक अभी भी सफल नहीं हो पा रहे हैं। जैनदर्शन के अनुसार द्रव्य तो शाश्वत् है परन्तु पर्याय क्षणभंगुर हैं, इसी कारण पुद्गल की पर्याय शब्द नाश को प्राप्त हो गयी है, अतः वैज्ञानिकों के बहुप्रयास के पश्चात् भी संभवतः वे पूर्वजों के शब्दों का अन्वेषण नहीं कर सकते हैं।

बन्ध

पुद्गलों का आपस में बंधना अथवा जीव के सहयोग से बन्ध को प्राप्त होना बंध है। वह बंध दो प्रकार का कहा गया है वैस्रसिक तथा प्रायोगिक। जिसमें पुरुष का प्रयोग अपेक्षित नहीं होता है, अर्थात् पुद्गलों का आपस में बन्ध होना, जिससे स्कन्ध की उत्पत्ति होती है। जब दो अणु आपस में मिलते हैं या स्कन्ध आपस में मिलते हैं तो वह वैस्रसिक बन्ध कहलाता है। जो बन्ध पुरुष अथवा आत्मा के सहयोग से बंधता है वह प्रायोगिक बन्ध कहलाता है। यह भी अजीव संबंधी तथा जीव संबंधी के भेद से दो प्रकार का है। अजीव का अजीव के साथ (पुद्गल वर्णगाओं) का बंध होता है तथा पुद्गल कर्म वर्णगाओं का जीव के साथ बन्ध होता है, जिससे जीव संसार परिभ्रमण करता है।

परमाणु के बन्ध के विषय में आचार्यों ने वैस्रसिक बन्ध कहा है और यही बन्ध स्कन्ध, महास्कन्ध की उत्पत्ति का कारण है। सर्वार्थसिद्धि में पुद्गल के बन्ध के विषय में कहा गया है कि **स्निग्ध रूक्षत्वाद् बन्धः**³⁶ अर्थात् स्निग्ध और रूक्ष में बन्ध होता है। स्निग्ध-स्निग्ध में तथा रूक्ष-रूक्ष में भी बन्ध होता है। विज्ञान कहता है कि अणु से जब स्कन्ध की उत्पत्ति होती है तो अणु के गर्भ में स्निग्ध प्रोट्रान तथा उनकी परिक्रमा करने वाला इलेक्ट्रान रूक्ष होता है।³⁷ तब उन दोनों में बन्ध होता है, स्निग्ध रूक्ष बन्ध के बाद आचार्यों ने कहा है कि **न जघन्यगुणानाम्**³⁸ अर्थात् बन्ध के लिए जघन्य गुण वाले स्निग्ध या रूक्ष अणु, स्कन्धों में बन्ध का अभाव कहा गया है। जब तक अणु या स्कन्ध में बन्ध के योग्य अधिक गुण वाले स्निग्ध, रूक्ष अणु या स्कन्ध नहीं पाये जाते तब तक बन्ध नहीं होगा, अर्थात् एक गुण वाले स्निग्ध अणु का एक गुण वाले रूक्ष अणु के साथ भी बन्ध नहीं होता, क्योंकि इनमें गुणों की जघन्यता अधिक है तथा जिनमें गुणों की समानता होती है, ऐसे पुद्गल कण भी बन्ध को प्राप्त नहीं होते, इसके लिए आचार्य महाराज ने **गुण साम्येसदृशानाम्**³⁹ कहकर बन्ध का अभाव प्रदर्शित किया है।

विज्ञान कहता है कि समान जाति तथा गुण वाले अणुओं का बन्ध नहीं होता। बन्ध का कारण एक ही है जिसे सूत्रकार ने कहा है **द्वयधिकादिगुणानां तु⁴⁰** अर्थात् दो स्निग्ध शक्ति अंश वाले परमाणु का चार स्निग्ध शक्ति अंश वाले परमाणु के साथ बन्ध होता है।

1, 2, 3 या 5 के साथ नहीं होता। उसी प्रकार विजातीय में दो स्निग्ध शक्ति अंश वाले परमाणु का चार रूक्ष शक्ति अंश वाले परमाणु के साथ बन्ध होता है। इसमें सजातीय तथा विजातीय दोनों परमाणु में दो अधिक गुण वालो का बंध कहा है, कहा भी गया है।

णिद्धस्स णिद्धेण दुराधिण लुक्खस्स लुक्खेण दुराधिण ।

णिद्धस्स लुक्खेण हवेइ बंधो जहणवज्जो विसमे समे वा ॥⁴¹

अर्थात् स्निग्ध का दो अधिक शक्त्यंश वाले स्निग्ध के साथ, रूक्ष का दो अधिक शक्त्यंश वाले रूक्ष के साथ तथा स्निग्ध का दो अधिक शक्त्यंश वाले रूक्ष के साथ बंध होता है परन्तु जघन्य शक्त्यंश वालो के साथ बन्ध नहीं होता है।

सामान्य जीवन के उदाहरण से देखें तो दूध से निकला हुआ घी पुनः जघन्य गुण वाले स्निग्ध दूध में बंध को प्राप्त नहीं होता परन्तु अन्य दो अधिक रूक्ष गुण वाले बेसन आदि में अथवा दो अधिक गुण वाले अपने समान अन्य स्निग्ध वस्तुओं में बन्ध को प्राप्त हो जाता है।

सूक्ष्मता पुद्गल के परमाणु तथा स्कन्ध की अपेक्षा कहा गया है। एक बड़े स्कन्ध की अपेक्षा से उससे छोटा स्कन्ध सूक्ष्म है तथा सबसे छोटा अणु अन्त्य सूक्ष्म है। बड़े की अपेक्षा छोटा है इसे आपेक्षित सूक्ष्मता कहते हैं। इससे विपरीत स्थूलता है। अणु के मिलने से छोटा स्कन्ध उत्पन्न होता है तथा स्कन्ध-स्कन्ध के मिलने से महास्कन्ध उत्पन्न होता है। इसे अन्त्य स्थूलता कहते हैं तथा छोटे की अपेक्षा उससे बड़ा स्कन्ध है इसे आपेक्षित स्थूलता कहते हैं।⁴²

इसके पश्चात् संस्थान अर्थात् आकार से युक्त पुद्गल होता है। जिसका आकार नियत होता है, वह इत्थंलक्षण संस्थान है। जिसका आकार अनिश्चित है, वह अनित्थं लक्षण संस्थान कहलाता है तथा यह भेद से भी उत्पन्न होता है। पुद्गल की सबसे छोटी इकाई अणु भी पुद्गल की पर्याय है। क्योंकि वह भी भेद से उत्पन्न होता है तथा स्कन्ध की उत्पत्ति भी भेद पूर्वक होती है। यह भेद छह प्रकार का कहा गया है। उत्कर, चूर्ण, खण्ड, चूलिका, प्रतर, अणुचटन तथा अन्धकार, छाया, आतप, उद्योत भी पुद्गल से उत्पन्न हैं। ये सब पुद्गल की विशेष पर्यायें हैं।⁴³

जैनाचार्यों ने आतप, उद्योत को प्रकाशमय बताया है। ये चन्द्रकान्तमणि तथा सूर्यकान्तमणि से उत्पन्न होने वाला प्रकाश ही है। हम प्रकाश, शब्द और रंग को व्यवहार में अलग-अलग मानते हैं। परन्तु सर्वार्थसिद्धिकार इन तीनों को पुद्गल की पर्यायें मानते हैं। वैज्ञानिक भी प्रकाश, शब्द और रंग को अलग नहीं मानते। शब्द अर्थात् ध्वनि और रंग अर्थात् वर्ण ये दोनों प्रकाश के ही प्रकम्पन हैं। भिन्न-भिन्न आवृत्तियों पर ये प्रकम्पन बनते हैं और प्रकाश, ध्वनि या वर्ण रूप में गृहीत होते हैं। संसार में जितनी भी दृश्यमान वस्तुएँ हैं, वे सब पुद्गल हैं या पुद्गल की पर्याय रूप में विद्यमान हैं। इसके अतिरिक्त अमूर्त द्रव्य भिन्न द्रव्य है।

धर्म द्रव्य एवं अधर्म द्रव्य

यह द्रव्यद्वयी अर्थात् धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य अभौतिक द्रव्य हैं, जो स्थिर और लोक में व्यापक हैं। ये द्रव्य जहाँ तक हैं, वहीं तक जीव और पुद्गल की गति और स्थिति संभव है। धर्म गति में केवल निमित्त कारण है, उदासीन कारण है उपादान कारण तो जीव और पुद्गल ही हैं। आचार्य नेमिचन्द्र स्वामी ने द्रव्यसंग्रह में धर्म द्रव्य के लिए उदाहरण स्वरूप गाथा देकर कहा है कि मछली के समान धर्म द्रव्य भी उदासीन रूप से सहायता करता है परन्तु धर्म द्रव्य के बिना गति भी नहीं होती।⁴⁴

गति तत्त्व

वर्तमान विद्वानों ने विज्ञान के संदर्भ में धर्म द्रव्य की तुलना गति तत्त्व के साथ की है। वैज्ञानिकों में सबसे पहले व्यवस्थित ज्ञान गैलिलीयों ने दिया और बाद में न्यूटन ने गति तत्त्व को स्वीकार किया और इसके नियम प्रस्तुत किए। न्यूटन के बाद प्रसिद्ध गणितज्ञ अलबर्ट आइंस्टीन ने भी गति तत्त्व की स्थापना करते हुए कहा-लोक परिमित है, लोक के परे अलोक अपरिमित है। लोक के परिमित होने के कारण ही द्रव्य अथवा शक्ति लोक के बाहर नहीं जा सकती। लोक के बाहर उस शक्ति का (द्रव्य का) अभाव है, जो गति में सहायक है और गति करती है।⁴⁵ यहाँ आइंस्टीन ने जिस शक्ति की बात कही है, वह शक्ति जीव और पुद्गल में है तथा सहायक शक्ति धर्मद्रव्य में है। इसलिए धर्म द्रव्य के अभाव के कारण जीव, पुद्गल अलोक में नहीं जा सकते। क्योंकि छह द्रव्यों में चार द्रव्य निष्क्रिय हैं। जो कर्तृत्व शक्ति से रहित है परन्तु जीव और पुद्गल दो द्रव्य सक्रिय है अर्थात् इनमें ही शक्ति विद्यमान है फिर भी धर्म और अधर्म के सहकारी कारण के अभाव में वह शक्ति अलोक में जाने के योग्य नहीं है। जैन दर्शन भी कहता है कि गति तत्त्व के समान धर्म द्रव्य भी लोक के बाहर नहीं पाया जाता जिस कारण जीव तथा पुद्गल द्रव्य की गति अलोकाकाश में नहीं होती।

धर्मद्रव्य एवं ईश्वर

विज्ञान जगत् में यह माना गया था कि प्रकाश की गति के लिए ईश्वर द्रव्य समूचे आकाश में विस्तार लिए हुए है। जिसप्रकार शब्द तरंगों को गति के लिए वायु की आवश्यकता है, उसीप्रकार प्रकाश तरंगों को ईश्वर की आवश्यकता है। किंतु यह धारणा वैज्ञानिकों को मान्य नहीं रही। वैज्ञानिकों ने ईश्वर तत्त्व को प्रकाश तरंगों की गति को बाधित करने के लिए गवेषणा की थी परन्तु ईश्वर तत्त्व गति में बाधक न होकर साधक सिद्ध हुआ इसी कारण वैज्ञानिकों ने ईश्वर को अमान्य कर दिया परन्तु ईश्वर की खोज धर्म द्रव्य की प्रामाणिकता तो सिद्ध होती है कि धर्म द्रव्य

भी गति में बाधक न होकर साधक है।

स्थिति तत्त्व

धर्म द्रव्य के विपरीत द्रव्य है अधर्म द्रव्य। जो वस्तु और जीव को स्थिति देने में निमित्त कारण है। आचार्यों ने इसे वृक्ष की उपमा देते हुए कहा है कि अधर्म द्रव्य वृक्ष के समान मुसाफिरों को ठहरने में उदासीन रूप से सहायक है।¹⁶ जब पुद्गल गति करते हुए ठहरता है तो अधर्म द्रव्य उसमें उपयोगी होता है। इस ब्रह्माण्ड में अनेक पुद्गल पदार्थ आकाश में लम्बे समय से ठहरे हुए हैं। उनको ठहरने के लिए अधर्म द्रव्य उपयोगी बना हुआ है। इसी कारण पुद्गल और अन्य द्रव्यों की स्थिति में अधर्म द्रव्य निमित्त कारण है।

वर्तमान में विज्ञान ने अधर्म द्रव्य के विषय में कोई खोज पूर्ण कार्य नहीं किया है। परन्तु जिस प्रकार से प्रकाश की गति को बाधित करने के लिए ईथर नामक तत्त्व की खोज करते हुए धर्म द्रव्य के लक्षण युक्त तत्त्व की खोज कर ली। आकाश में गति करने वाले पदार्थ हैं तो उनको ठहरने के लिए सहायक भी कोई पदार्थ होगा। प्रो० घासीराम जैन ने अपनी कासमोलॉजी ओल्ड एण्ड न्यू नाम की पुस्तक में धर्म द्रव्य की तुलना आधुनिक विज्ञान में ईथर नामक तत्त्व से और अधर्म द्रव्य की तुलना सर आइजक न्यूट्रन ने आकर्षक सिद्धान्त से की है। क्योंकि वैज्ञानिकों ने ईथर को अमूर्तिक, व्यापक, निष्क्रिय और अदृश्य मानने के साथ गति का आवश्यक माध्यम भी माना है। जैनों ने धर्म द्रव्य को भी ऐसा ही माना है। अधर्म द्रव्य और विज्ञान के आकर्षक सिद्धान्त की तुलना करते हुए प्रोफेसर जैन ने लिखा है। यह जैनधर्म के अधर्म द्रव्य विषयक सिद्धान्त की सबसे बड़ी विजय है कि विश्व की स्थिरता के लिए विज्ञान ने अदृश्य आकर्षक शक्ति की सत्ता को स्वयं सिद्ध प्रमाण के रूप में स्वीकार किया और प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइंस्टीन ने उसमें सुधार करके उसे क्रियात्मक रूप दिया। अब आकर्षक सिद्धान्त को सहायक कारण के रूप में माना जाता है, मूल कर्ता के रूप में नहीं, इसलिए अब यह

जैनधर्म विषयक अधर्म द्रव्य की मान्यता के बिल्कुल अनुरूप बैठता है।⁴⁷

आकाश द्रव्य

आकाश द्रव्य रूपादि रहित, अमूर्त, निष्क्रिय तथा सर्व व्यापक द्रव्य है। लोकवर्ती समस्त पदार्थों को यह स्थान (अवगाह) देता है तथा स्वयं भी उसमें अवगाहित होता है।⁴⁸ यद्यपि जीव और पुद्गल भी एक दूसरे को अवगाह देते हैं, किन्तु उन सबका आधार आकाश ही है। यह लोक और अलोक के भेद से दो भागों में विभक्त है। आकाश के जितने हिस्से में जीवादि पाये जाते हैं, वह लोकाकाश है तथा उससे बाहर का अनन्त आकाश अलोकाकाश कहलाता है।

लोकाकाश लोक और आकाश इन दो शब्दों से मिलकर बना है। लोक शब्द संस्कृत के लुक् धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ हुआ जहाँ तक जीवादि पदार्थ देखे जाते हैं, वह लोक है। उससे बाहर के आकाश को अलोक कहते हैं। लोक और अलोक का यह विभाग किसी दीवार की तरह नहीं है, जो आकाश में भेद करती हो, अपितु पूर्ण आकाश अखण्ड है। जीवादि पदार्थों की उपस्थिति और अनुपस्थिति के कारण यह भेद हुआ है। जैनदर्शन के अनुसार लोकाकाश सम्पूर्ण आकाश के मध्य भाग में दोनों पैर फैलाकर कमर पर हाथ रखकर खड़े हुए मनुष्य के आकार का है। यह चौदह राजू ऊँचा और सात राजू चौड़ा है। वस्तुतः इसके विभाजन का कारण धर्म और अधर्म द्रव्य ही है। लोक का यह आकार धर्म और अधर्म द्रव्य के ही कारण है। जो धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य का आकार है, वही लोक का आकार है।

अन्य दर्शनों ने भी आकाश को स्वीकार किया है, किन्तु उसके लोक और अलोक रूप भेद को नहीं मानते। इसी कारण से उनके यहाँ धर्म और अधर्म द्रव्य की भी मान्यता नहीं है। जैनदर्शन में इन्हें माना गया है, जो कि तर्कसंगत है तथा आधुनिक विज्ञान ने भी इसके अस्तित्व पर अपनी मुहर लगा दी है।

काल द्रव्य

काल द्रव्य प्रत्येक पदार्थ में होने वाले परिवर्तन का हेतु है।⁴⁹ यही वह द्रव्य है, जिसके निमित्त से द्रव्य अपनी पुरानी अवस्था को छोड़कर प्रतिक्षण नया रूप धारण करता है। यह भी आकाश की तरह अमूर्त और निष्क्रिय है किन्तु उसकी तरह एक ओर व्यापक न होकर असंख्य है। जो पूरे आकाश के प्रदेशों पर रत्नों की राशि की तरह भरे पड़े हैं। आकाश के जितने प्रदेश हैं, उतने ही कालाणु है।⁵⁰ वर्तना इसका प्रमुख लक्षण है। पदार्थों में परिणमन यह बालात् नहीं कराता। बल्कि इसकी उपस्थिति में पदार्थ स्वयं अपना परिणमन करते हैं। यह तो कुम्हार के चाक के नीचे रहने वाली कील की तरह है जो स्वयं नहीं चलती, न ही चाक को संचालित करती है। फिर भी कील के अभाव में चाक घूम नहीं सकता। चाक के परिभ्रमण के लिए कील का आलम्बन अनिवार्य है। काल द्रव्य की यही भूमिका है। परिणमनगत इस आलम्बन को वर्तना कहते हैं। यह काल द्रव्य का मुख्य लक्षण है। इसे ही निश्चय काल कहते हैं। इसके अभाव में पदार्थों का परिणमन नहीं हो सकता। समय, पल, घड़ी, घण्टा, मिनट आदि व्यवहार काल हैं। समय काल की सूक्ष्मतम इकाई है। एक पुद्गल के परमाणु को मंद गति से आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक जाने में जितना काल लगता है, उसे समय कहते हैं।⁵¹

इसे सभी दर्शनकारों ने स्वीकारा है, किन्तु कुछ इसे अखण्ड और व्यापक मानते हैं, जबकि ऐसा है नहीं। यदि ऐसा होता है तो भिन्न क्षेत्रों में समय भेद नहीं देखा जाता। हम देखते हैं कि भारत में होने वाले समय और अन्य देशों में होने वाले समय में भेद दिखाई पड़ता है। जैसे भारत लंदन के समय में 5 घण्टे का फर्क है। यह काल द्रव्य की अनेकता का ही परिणाम है। यदि काल द्रव्य एक होता तो सर्वत्र एक ही समय प्रवर्तित रहता।

कुछ दार्शनिक निश्चयकाल को न स्वीकारते हुए मात्र व्यवहार काल को स्वीकारते हैं, किन्तु व्यवहार काल से ही निश्चय काल का अनुमान किया जाता है। जैसे किसी बालक में शेर का उपचार मुख्य शेर के सद्भाव में ही किया जाता है। उपचरित शेर वास्तविक शेर का परिचालक

होता है, वैसे ही काल संबंधी समस्त व्यवहार मुख्य काल के अभाव में नहीं हो सकता।

इसी प्रकार जैन तत्त्व चिंतन में काल की अवधारणा को लेकर दो मत प्रचलित हैं, पहला मत दिगम्बर मत है जो काल को स्वतंत्र द्रव्य मानता है। दूसरे श्वेताम्बर मत में काल को स्वतंत्र द्रव्य न मानकर औपचारिक द्रव्य माना है तथा जीव और अजीव द्रव्यों की पर्याय मात्र कहा है।

आइंस्टीन के अनुसार आकाश और काल कोई स्वतंत्र तथ्य नहीं हैं। ये द्रव्य या पदार्थ के धर्म मात्र हैं। इस दृष्टि से विज्ञान की काल संबंधी मान्यता, श्वेताम्बर परम्परा से मिलती जुलती है, लेकिन यह अपने आप में पूर्ण नहीं है।

आज विज्ञान की यह महत्त्वपूर्ण मान्यता है कि सापेक्षता के बिना किसी घटना की व्याख्या नहीं की जा सकती। वैज्ञानिक आइंस्टीन का देश काल की सापेक्षता का सिद्धान्त प्रत्येक घटना की व्याख्या करता है। वर्तमान में व्यक्ति की मान्यता मात्र व्यवहार काल की रह गई है। वह निश्चय काल को मानता नहीं। क्योंकि निश्चय को देख नहीं सकते परन्तु निश्चय काल का परिणाम व्यवहार काल है। काल द्रव्य के दोनों पक्षों को मानना ही काल द्रव्य को पूर्ण रूप से जानना है।

निष्कर्ष

षड्द्रव्यों के विवेचन में भी जीव द्रव्य और पुद्गल द्रव्य संसार में भ्रमण कराने तथा संसार से पार उतारने में निमित्त कारण हैं। परन्तु धर्म, अधर्म, आकाश, काल, द्रव्य निष्क्रिय हैं वे जीव और पुद्गल के लिए सहायक हैं, परन्तु यह जीव और पुद्गल के लिए आवश्यक होते हुए भी जीव और पुद्गल के संसार संबंधी कर्मों से पार उतारने के लिए निष्क्रिय है, इसलिए आचार्य उमास्वामी महाराज ने तत्त्वार्थसूत्र में **निष्क्रियाणि च**⁵² कहकर इन द्रव्यों को क्रिया रहित घोषित किया है। विज्ञान ने इन निष्क्रिय द्रव्यों के विषय में भी अन्वेषण किया है तथा यह अन्वेषण सहायक तो है पर मोक्ष पुरुषार्थ के लिए आवश्यक नहीं है।

संदर्भ

1. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र 38, पृष्ठ -237
2. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र - 29, पृष्ठ - 229
3. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र -30, पृष्ठ - 229
4. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र - 29, 30, पृष्ठ - 229
5. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र - 29, 30, पृष्ठ - 229
6. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय-5, सूत्र-5, पृष्ठ-92
7. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय-5, सूत्र-5, पृष्ठ-92
8. पंचास्तिकाय, गाथा-10
9. आप्त मीमांसा, श्लोक-59
10. पंचास्तिकाय, गाथा-11
11. द्रव्य मीमांसा और दर्शन, पृष्ठ-3
12. द्रव्य मीमांसा और दर्शन, पृष्ठ-3
13. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र - 28, पृष्ठ - 299
14. सर्वार्थसिद्धि , अध्याय-2, सूत्र-13, पृष्ठ-124
15. जैन आगमों में वनस्पति विज्ञान, पृष्ठ-34
16. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-2, सूत्र-6, पृष्ठ 114-115
17. तिलोय पण्णत्ती, भाग-1, अध्याय-2, गाथा- 296-301 पृष्ठ-247, 248
18. जैन आगमों में वनस्पति विज्ञान, पृष्ठ 45-46
19. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-1, पृष्ठ-201
20. राजवर्तिक, अध्याय-5, सूत्र-1, वार्तिक-24, पृष्ठ-434, पंक्ति 12,
21. तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय-5, सूत्र-5, पृष्ठ-92
22. तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय-5, सूत्र-23, पृष्ठ-97
23. तत्त्वार्थ सूत्र, अध्याय-5, सूत्र-25, पृष्ठ-98

24. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-8, पृष्ठ-208
25. पंचास्तिकाय तात्पर्य वृत्ति, अधिकार-4, गाथा-4, पृष्ठ-12
26. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-11, पृष्ठ-210
27. नियमसार, गाथा-36, पृष्ठ- 56, 57
28. नाभिकीय रसायन रेडियो एक्टिवता, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, कक्षा-9, पाठ-5, पृष्ठ - 89
29. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-26, पृष्ठ-227
30. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-27, पृष्ठ-228
31. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-28, पृष्ठ-228
32. परमाणु संरचना के सिद्धान्त, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, कक्षा-9, पाठ-2, पृष्ठ 21
33. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-24, पृष्ठ-224
34. राजवार्तिक, अध्याय-5, सूत्र-24, पृष्ठ - 495, पंक्ति 10
35. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-24, पृष्ठ-224
36. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-33, पृष्ठ-232
37. परमाणु संरचना के सिद्धान्त, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, कक्षा-9, पाठ-2, पृष्ठ- 19
38. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-34, पृष्ठ-233
39. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-35, पृष्ठ-233
40. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-36, पृष्ठ-234
41. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-35, पृष्ठ-234
42. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-24, पृष्ठ-224
43. सर्वार्थसिद्धि, अध्याय-5, सूत्र-24, पृष्ठ-225
44. बृहद् द्रव्य संग्रह, गाथा-17
45. जैनदर्शन मनन और मीमांसा, पृष्ठ-160

46. बृहद् द्रव्य संग्रह, गाथा-18
47. कास्मोलॉजी ओल्ड एण्ड न्यू, पृष्ठ-25-26
48. बृहद् द्रव्य संग्रह, गाथा-19
49. बृहद् द्रव्य संग्रह, गाथा-21
50. बृहद् द्रव्य संग्रह, गाथा-22
51. नियमसार, पृष्ठ-31
52. तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय-5, सूत्र-17

उपसंहार

वर्तमान में विज्ञान के द्वारा जो अन्वेषण किया जा रहा है। वह मात्र परोक्ष इन्द्रिय एवं सामान्य बुद्धि के द्वारा किया जा रहा परीक्षण है, वह भी अपूर्ण है। उसमें अन्वेषण की अभी आवश्यकता है। वर्तमान में जैन विद्यार्थियों के द्वारा विज्ञान में अन्वेषण तो किया जा रहा है, परन्तु जैनदर्शन के अध्ययन के बिना यह विज्ञान का अध्ययन अपूर्ण है। वह केवल विज्ञान के अध्ययन से एक पक्ष को तो जान लेते हैं पर जैनदर्शन के अध्ययन के अभाव में दूसरे पक्ष से अछूते रह जाते हैं। अतः जैन विद्वानों, जैन विद्यार्थियों को विज्ञान एवं जैनदर्शन का तुलनात्मक अध्ययन करना आवश्यक है। जैनदर्शन में विज्ञान की बहुत सी बातें कही गयी है, परन्तु तुलनात्मक अध्ययन के अभाव में वह बातें समाज के सामने उजागर नहीं हो पा रही है। जिनमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्यों की सिद्धि, सूर्य, चन्द्रमा, ज्योतिष देवों की गति, रात्रिभोजन निषेध का वैज्ञानिक विवेचन, दिशाओं की महत्त्वपूर्णता और विज्ञान, आचार विचार और विज्ञान, जैन दर्शन में वर्णित वर्गणाँ और विज्ञान, आदि विषयों पर गहराई से चिन्तन किया जाना आपेक्षित है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अहिंसकाहार, डॉ० पी० सी० जैन, अहिंसकाहार शोध केन्द्र जयपुर, 2005
2. अशोक के धर्मलेख, जानार्दन भट्ट, भारतीय ज्ञानपीठ काशी,
3. आप्तमीमांसा, आचार्य समंतभद्र स्वामी, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, 1999
4. आस्था और अन्वेषण, सुरेश जैन, आई० ए० एस०, ज्ञानोदय विद्यापीठ भोपाल, 2000
5. आदिनाथ पुराण, आचार्य जिनसेन स्वामी, भारतीय ज्ञानपीठ, 2003
6. उत्तराध्ययन उत्तरार्ध, आचार्य ज्ञानभूषण जी, मुद्रण- एस० एन० प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा दिल्ली, 1996
7. एल्गो (**Algae**), लेखक-डॉ० श्यामसुंदर पुरोहित, नागौर, प्रकाशक-राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, संस्करण- 1979
8. कास्मोलॉजी ओल्ड एण्ड न्यू, प्रो०जी०आर० जैन, भारतीय ज्ञानपीठ, 1999
9. कार्तिकेयानुप्रेक्षा, आचार्य कार्तिकेय स्वामी, श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल श्री मद् राजचन्द्र आश्रम आगास, सोलापुर, विक्रम संवत् 2053
10. गोम्मटसार जीवकाण्ड, आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती, प्रकाशक-श्रीपरमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, आगास, ई० 1972
11. गोम्मटसार कर्मकाण्ड, आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती, श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, आगास, विक्रम संवत् 2055
12. जयधवला, आचार्य वीरसेन, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली
13. जैन आगमों में वनस्पति विज्ञान, कन्हैयालाल लोढा, प्रकाशक -श्री अखिल भारतीय जैन विद्वत परिषद्, जयपुर, सम्पादक-डॉ० नरेन्द्र भानावत, संस्करण-1989
14. जैनदर्शन मनन और मीमांसा, श्वेताम्बराचार्य महाप्रज्ञ जी, प्रकाशक-आदर्श साहित्य संघ नईदिल्ली, 1977
15. जैनधर्म, पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, आचार्य शान्तिसागर छाणी स्मृति ग्रंथमाला, बुढ़ाना, मुजफ्फरनगर, उत्तरप्रदेश, 2006
16. जैनधर्म और दर्शन, मुनि प्रमाणसागर जी, श्री दिग. साहित्य प्रकाशन समिति, बरेला, 1998

17. जैनेन्द्रसिद्धांत कोश, सम्पादक-जिनेन्द्र वर्णी जी, भाग-3, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, संस्करण-2003
18. जैनस्तूप एंड एण्टीक्वीटीज ऑफ मथुरा
19. तत्त्वार्थसूत्र, आचार्य उमास्वामी, प्रकाशक श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल, जबलपुर (म०प्र०) संस्करण प्रथम।
20. तिलोयपण्णत्ति, आचार्य यतिवृषभ, अनुवादक-आर्यिका विशुद्धमति माता जी, प्रकाशक श्री अतिशय क्षेत्र तिजारा, अलवर, 1997
21. द्रव्य मीमांसा और दर्शन, प्रोफेसर डॉ० महावीर राज गेलड़ा, प्रकाशक- जैन विश्व भारती संस्थान लाडनूँ, 2005
22. नाभिकीय रसायन रेडियो एक्टिवता, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान,
23. नियमसार, आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी, प्रकाशक-सत्साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार विभाग कहान, दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट जयपुर, संस्करण -1988।
24. पंचास्तिकाय तात्पर्य वृत्ति, आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी, प्रकाशक परमश्रुत प्रभावक मण्डल बम्बई, वि०स० 1972।
25. परमाणु संरचना के सिद्धान्त, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान
26. प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग, नागेन्द्र नीरज, निरोगी दुनिया प्रकाशन, जयपुर, 2002
27. बृहद् द्रव्य संग्रह, आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती, प्रकाशक- श्रीमद् राजचन्द्र जैन ग्रंथमाला आगास, विक्रम सं० 2022
28. भगवती आराधना, आचार्य शिवार्य, भाषाटीकाकर्त्री-आर्यिका आदिमती माता जी, प्रकाशक-श्री शान्तिवीर दिगम्बर जैन संस्थान महावीर जी, 2006
30. भागवत् , गीता प्रेस गोरखपुर
31. भोजन कब, क्यों, कैसे, लेखक मुनि कामकुमारनंदी
32. वत्थुविद्या, आर्यिका विशुद्धमती माताजी, आचार्य शिवसागर दि० जैन ग्रंथमाला श्री महावीर जी राजस्थान, 1996
33. वैज्ञानिकों की दृष्टि में उपवास, लेखक- ऐलक निर्भय सागर जी
34. रत्नकरण्डकश्रावकाचार, आचार्य समन्तभद्रस्वामी, टीकाकार-पं०

- सदासुखदास जी, प्रका.-पं० सदासुख ग्रन्थमाला- अजमेर, संस्करण- प्रथम ।
35. राजवर्तिक, आचार्य अकलंक स्वामी, भारतीय ज्ञानपीठ बनारस, संस्करण वि० सं० 2008 ।
 36. रिसर्च ऑफ डाइनिंग टेबल, श्रीमद् विजय हेमरत्न सूरीश्वर जी, प्रकाशक- अर्हद् धर्म प्रभावक ट्रस्ट अहमदाबाद, 2007
 37. स्टडीज इन साउथ इंडियन जैनिज्म, प्रो० रामस्वामी आयंगर,
 38. सर्वार्थसिद्धि, आचार्य देवनन्दी (पूज्यपाद स्वामी) विरचित, सम्पादक- सिद्धान्ताचार्य पं० फूलचन्द शास्त्री, प्रकाशक-भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, संस्करण-चतुर्थ
 39. सागार धर्माभूत, पं० आशाधर जी, सं० कैलाशचंद सिद्धांत शास्त्री, प्रकाशक- भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, 2005 ।
 40. सूर्य चिकित्सा ही एकमात्र विकल्प, अखंड ज्योति, जुलाई-1993
 41. सूक्ष्म जीवों की विविधता, डॉ० जी० पी० शर्मा, तिलोय प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर, 2005-2006
 42. सूक्ष्म जैविकी, सम्पादक-डॉ० एस० बी० लाल, प्रकाशक-राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, संस्करण-2000
 43. श्रावकाचार संग्रह पं० आशाधर जी, सं० पं० हीरालाल जी शास्त्री, प्रकाशक- जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, प्रकाशन-सं० 1998, पुष्प-28
 44. cloning, by Demen R. obrzowy, The New Book of popular Science, Vol.-3, Grolier Inc. 1989
 45. Deepak chopra-perfect health harmory Book new york, 1991
 46. From cell to cloning by p.c.Joshi, Science Reporter, Feb-1998
 47. P. C. W. Davies and I.R brown the ghost in the atom cambridge university press, cambridge, 1986
 48. The cell, by John pfeiffer, Lifetime Book Inc., Hongkong, 2nd Edition, 1998